सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

जन्मोत्सव विशेषांक

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 54 : अंक : 07

अक्टूबर 2021

प्रकाशन तिथि : 01.10.2021

मूल्य - एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 380/-

अमृतकण

पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खाः यः क्रियावान स पण्डितः।।

पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले और शास्त्र पर चर्चाऐं करने वाले तो मात्र व्यसनी और मूर्ख ही हैं, अगर वे इस पर आचरण नहीं करतें । पण्डित यानि बुद्धिमान तो वही है जो शास्त्रोक्त कर्तव्यों का पालन कर ज्ञान को अपने आचरण में लेता है।

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचि।
न स तत्पदमाप्नोति सं सारंचाधिगच्छति।।

जो विज्ञान रहित है, जिसके मन व आत्मा में युति नहीं है, जो सर्वदा अपवित्र विचार करता रहता है, वह कुबुद्धि वाला उस उच्च पद को प्राप्त नहीं कर पाता जिस पर आसीन होकर आत्मा मालिक बन कर जीवन-रथ को चलाता है। इन्द्रियां रूपी घोड़े उस रथ के मालिक बन जाते हैं और जन्म-मरण के चक्कर में भटकते रहते है।

व्यसनेवार्थ कृच्छे वा भये वा जीवितान्तके।
विमृशन्वै स्वयाबुद्धया धृति मान्नावसीदति।।

धैर्यवान व्यक्ति, स्वजन का वियोग होने पर, धन का नाश होने पर, भय सामने आने पर और प्राणों पर संकट होने पर भी बुद्धि से काम लेते हैं, अतः कभी दुखी नहीं होते।

ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः स पिता यस्तु पोषकः।
तन्मित्रं यस्य विश्वासः सा भार्या यत्र निर्वृत्तिः।।

पुत्र वही है जो पिता का भक्त है, पिता वह है जो पुत्रों का पालन-पोषण करता है, मित्र वह है जो विश्वास पात्र हो और पत्नी वह है जिससे सुख प्राप्त हो।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 54 अक्टूबर 2021 अंक : 07

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।

(श्रीमद्भगवद्गीता 2/66)

जो योगी नहीं है उसे सम्यक् बुद्धि प्राप्त नहीं होती जिसे सम्यक् बुद्धि प्राप्त नहीं है उसकी सुभावना नहीं होती। सुभाव न होने से मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती और बिना शान्ति के सुख कहाँ से हो सकता है ?

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	6
3.	श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा- डॉ. विजय सिंह	10
4.	लीलाधारी की लीलाऐं...(द्वितीय)-जगदीश राए बंसल	14
5.	गुरु चरणों में अर्पित स्वराञ्जहलि- कृष्ण कुमार पाण्डेय	19
6.	योग तथा उसका महत्त्व- श्री जितेन्द्रबहादुर परमार्थी	21
7.	बदलते मौसम की बीमारी से-बचाव व इलाज- पं. रामस्वरूपी शास्त्री	25
8.	जीवन तत्व साधन से गठिया रोग निवारण- अन्तू राम यादव	29
9.	अन्तर्मुखता का साधन मौन- अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	32
10.	अहिंसा और समता भाव- डॉ. श्री रमेशचन्द्र मिश्र	35
11.	सूक्ष्म शरीर की बात- आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा	40
12.	धर्म और कर्म	52

●●●

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 380.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख–

तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु

(योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

जीवन को समाधि के परमानन्द से पूर्ण करने के लिए तथा समाधि द्वारा पुनरपि जननम् और पुनरपि मरणम् की भव–व्याधि से छूटकर मोक्ष प्रद प्राप्त करने के लिए सर्व प्रथम जिस साधना की आवश्यकता पड़ती है वह है आचार निर्माण की साधना। जो व्यक्ति अपने आचार अथवा चरित्र निर्माण की इस मूलभूत साधना में सफलीभूत हो पाते हैं निश्चित रूप से वे ही समाधि रूपी अनुपम आनन्द–सागर में अवगाहन करने का सौभाग्य प्राप्त करके मनुष्य देह धारण करने के चरम लक्ष्य को पा लेते हैं। योग दर्शन में वर्णित यम–नियम रूपी महाव्रतों पर आरूढ़ होने का महत्त्वपूर्ण परामर्श साधन को उसके चरित्र निर्माण की दृष्ट से ही दिया गया है। यम–नियम रूपी महाव्रतों पर आरूढ़ हुए बिना योगारूढ़ होने की कल्पना एक निरर्थक कल्पना ही कही जा सकती है। अहिंसा–सत्य अस्तेय–ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह संज्ञक यमों और शौच सन्तोष, तपः स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान संज्ञक नियमों से नियंत्रित जीवन ही तो चरित्रवान जीवन कहकर पुकारा जा सकता है। यमों और नियमों की उपेक्षा करते हुए इनकी मर्यादा से बाहर जो जीवन जिया जाता है वही होता है अमानवीय जीवन। आसुरी जीवन, भोग–परायण जीवन और स्वार्थ परायण जीवन, अमानवीय जीवन के इतर नाम हैं। जहाँ स्वार्थ का, लोभ, मोह, क्रोध, दम्भ और दर्प का हिंसा असत्य और परिग्रह का, छल, कपट, ईर्ष्या एवं द्वेष का स्वच्छन्द साम्राज्य हो, वहाँ चरित्र को उज्ज्वल और पावनतम् बनाने वाली निर्मल विचार गंगा का मुक्त प्रवाह हो ही नहीं सकता है। इस शुभ्र विचारवती भव्य भागीरथी की अपने देह प्रदेश में बहाले आने के लिए निश्चय ही तुम्हें स्वयं भगीरथ बनना पड़ेगा। जब ऐसा होगा, तभी हो सकेगा शरीर में समाये हुए बहु संख्यक सगर वंशज रूपी वत्सर्षों का उद्धार या सुधार।

भगवान पतंजलि देव ने–इसीलिए यह अनुभव करते हुए कि यौगिक मार्ग ही मनुष्य मात्र ने कल्याण और उद्धार का एक मात्र उपाय है, अपने योग दर्शन में योगारूढ़ बनने के लिए योग के आठ अंगों का निरूपण किया है। यम–नियम इन्हीं आठ अंगों में से प्रमुख और महत्त्वपूर्ण अंग है। जो भी व्यक्ति अपने जीवन और व्यवहार में इन यम–नियम रूपी महाव्रतों को धारण कर लेता है वह मनुष्य ही नहीं किन्तु मनुष्य से ऊपर देवत्व की श्रेणी में पहुँच कर मोक्ष का भागी बन जाता है। श्री मद्भगवद्गीता में जिस दैवी सम्पदा का

वर्णन भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र ने किया है वह इन यम–नियमों में समायी हुई है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान जैसे महाव्रत यदि हम सबके आचरण में आ उतरें तो फिर शोक–मोह मदमान, भय, राग–द्वेष, क्लेश आदि दुर्गुण रहेंगे ही कहाँ? इन यम–नियम रूपी महाव्रतों के पालन में देश विशेष या काल विशेष की भी कोई रुकावट नहीं क्योंकि यह चाहे जिस स्थान पर चाहे जिस काल में धारण किये जा सकते हैं। इसीलिये जाति देश और काल से आबद्ध न होने के कारण सार्वभौम महाव्रतों की संज्ञा इन्हें दी गई है। स्त्री हो या पुरुष बिना किसी हिंसक के इनका परिपालन समान रूप से कर सकते हैं। विश्व के सभी निवासी फिर चाहें वे किसी भी राष्ट्र में क्यों न रहते हों यदि इन यम और नियमों के अनुसार अपना आचार–व्यवहार बना लें तो फिर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर छोटे–बड़े युद्धों का खतरा रहेगा ही कहाँ? सर्वत्र दुःख दैन्य से रहित समानता और सुख शान्ति का वातावरण ही दृष्टिगोचर होगा। लेकिन दुर्भाग्य है कि विश्व के चिन्तनशील मनुष्यों का ध्यान–व्यक्ति–व्यक्ति के आचरण निर्माण के हित में बनाये गये ऐसे स्वर्णिम सिद्धान्तों की ओर जा ही कहाँ रहा है। भारत के ऋषि–मुनियों द्वारा निर्धारित ऐसे सिद्धान्त और नियम जिनसे संसार शाश्वत शान्ति पा लेने का लाभ उठा सकता है उन राष्ट्र नायकों से उपेक्षित और अनदेखे से पड़े हैं जो आज विश्व शान्ति की और मानवता की रक्षा के नाम पर बड़ी–बड़ी व्यवसाध्य योजनायें बनाते हैं। विश्व स्वास्थ्य संघ अरबों खरबों का बजट बनाकर सभी अविकसित और विकासशील देशों को इस आशय से प्रचुर धन दे देता है कि दुनिया के धरातल पर रहने वाले सभी मनुष्य स्वस्थ और रोग रहित जीवन जी सकें। लेकिन वह इस सच्चाई की उपेक्षा कर जाता है कि विश्व के असंख्य मानव हाड़–चाम की दृष्टि से अगर स्वस्थ और सबल बन भी जायें तो भी मानवता का भला तब तक नहीं हो सकता जब तक कि मानसिक दृष्टि से मनुष्य को स्वस्थ, सबल और चरित्र निष्ठ न बनाया जावे।

ऐसी जनहितकारिणी विश्वव्यापी योजना अगर किसी ने बनाई है तो वह बनायी है भारत के योगियों, ऋषियों और मुनियों ने। यम–नियमों की साधना को आत्मसात करने तथा तदनुसार जीवन व्यतीत करने का परामर्श इसी विश्वव्यापी कल्याणकारी योजना का प्राथमिक सोपान है। जो इस सोपान पर चढ़ना जान लेते हैं वे न केवल अपना कल्याण कर पाते हैं वरन् संसार के इतर प्राणियों के कल्याण में भी सहायक बन जाते हैं। स्वर्ण जैसा आभावान् और फौलाद जैसा सुदृढ़ चरित्र यम–नियमों की परिपालना के अतिरिक्त और बन ही कैसे और किससे सकता है। ब्रह्मचर्य इसी साधना का एक अंग है, जो ओज तेज बल बुद्धि आदि की वृद्धि का मुख्य आधार रहता है। यम–नियम की साधना को अपनाने के लिए किसी स्वल्प अथवा प्रचुर व्यय की भी आवश्यकता नहीं आवश्यकता है

केवल व्यक्ति के संकल्प लेने की और संकल्प से विरत न होने की।

इन महाव्रतों की साधना का संकल्प लेकर साधक उससे विरत न हो इसके लिए मन की सहायता लेना अनिवार्य रहता है। क्योंकि मन ही तो पुरुष की सारी गतिविधियों का एकमात्र संचालक होता है। यस्मान्नऋते–किंचित कर्म क्रियते–जिसके बिना किसी भी कार्य को किया ही नहीं जा सकता है, ऐसा कथन वेद–संहिताओं में भी मिलता है। वैदिक मन्त्रों में मन की ऐसी अनिवार्यता और प्रमुखता की महत्ता को समझकर ही प्रत्येक मनुष्य को भगवान वेद ने यह आदेश और उपदेश दिया है कि वह नित्य प्रति 'तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु' इस सूत्र को अपने ध्यान और जप का विषय बना ले। ऐसा करने से उसे अपने मन को अच्छे, भद्र और कल्याणकारी शुभ विचारों से भरा रखने की प्रेरणा सदा प्राप्त होती रहेगी। जब मनुष्य का मन शुभ और शिव संकल्पों से भरा रहेगा तो वह निश्चित ही कुपथगामी न बनकर सदा सुपथ पर ही चलने की चेष्टा करता रहेगा। 'अग्ने नय सुपथा रायेन'–अर्थात् 'हे ज्योतिर्मय प्रभु तुम हमें सुपथ पर ले चलो'–यह प्रार्थना तभी सफल और सार्थक हो सकती है जब प्रार्थी साधक का मन शिव–संकल्पों और भद्र भावनाओं से भरा पूरा हो। कलुषित छल, कपट, रागद्वेष और मद–मत्सर आदि दोषों से आपूरित मन–सुपथगामी हो ही नहीं सकता है। मन के सुपथगामी हुए बिना सत्कर्मों का सम्पादन और सत्य धर्म का पालन भी नहीं हो सकता इसीलिए वैदिक ऋषियों ने तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु का मूल मन्त्र हमें दिया और इसी दृष्टि से योग दर्शन में भगवान् पतंजलि ने–परमपुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए योगश्चित्त वृत्ति निरोधः का प्रथम सूत्र दिया। वेदों के शिव संकल्प मन्त्रों में जिस तत्व को मन कहकर इंगित किया गया है उसी को योग दर्शन के सूत्रकार ने चित्त कहा है। चित्त कहिए अथवा मन कहिए उसका सांसारिक भोगों की ओर सतत् भागने के स्वभाव को शिव संकल्पों के केन्द्रबिन्दु–परम प्रभु के ध्यान में लगा देने का स्वभाव बना लेना ही चित्त वृत्ति निरोध का अभिप्राय है। जो दुष्वृत्तियों का निरोध करके ईश्वराभिमुख हो जाते हैं वे चरित्रवान कहलाते हैं और ऐसे चरित्रवान व्यक्ति ही संसार में यश कीर्ति के भागी बनकर कैवल्य–लाभ प्राप्त कर पाते हैं। किन्तु इसके लिए जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं मन का परिष्कार आवश्यक है और इसके साथ ही आवश्यक है यम–नियमों के व्रतों की भूमिका पर दृढ़ता से आरूढ़ रहना।

यही एक ऐसा मार्ग है जिस पर चलकर व्यक्ति–व्यक्ति का और समाज, राष्ट्र और विश्व का भला हो सकता है। न अन्यपन्था विद्यते अयनाय। इसके अलावा अन्य कोई मार्ग हो ही नहीं सकता जिस पर शान्ति और सुख के साथ चला जा सके।

सम्पादकीय—

योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का 112वाँ पावन प्राकट्य दिवस

—योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

कभी–कभी धराधाम पर भगवान् से 'तद्भाव' युक्त महापुरुष अवतरण करते हैं तथा भगवान् के संस्कारी जीवों का कल्याण करने के लिए योग के दिव्य ज्ञान का उपदेश कर उन्हें साधना के पथ पर लगाकर मुक्ति का अधिकारी बना देते हैं। ऐसे ही एक महापुरुष हरियाणा प्रान्त के एक छोटे से गाँव में अवतरित हुए हैं जो युगों–युगों तक भक्तों के लिए स्मरणीय रहेंगे। गाँव अलुपुर में इनका प्रादुर्भाव हुआ। अपने भावी पिता को अपने आगमन का संकेत दिया था और कहा था कि मेरी माँ को विव्य रसायनों का सेवन कराना। अपने ध्यानयोग के बल से पूर्व जन्म का वृत्तान्त जान लिया था। नेपाल में 'गण्डकी नदी पर स्थित 'त्रिवेणीधाम'' में रहकर बहुत समय तक समाधि का अभ्यास करते हुए शरीर के अत्यन्त वृद्ध होने पर अपनी इच्छा से उसका त्याग करके इस जन्म के पिता पूज्य पं. देवीराम जी के यहाँ नूतन शरीर धारण किया। शैशवावस्था से ही अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र का साक्षात्कार बना रहता था। नाना प्रकार की बाल–लीलाओं को करते हुए अत्यन्त आल्हादित रहा करते थे। इनके सौम्य व आनन्ददायिनी रूप को देखकर 'पिताश्री' ने इनका नाम 'चन्द्रदत्त' रखा। ये अपने भक्तों को शीतलता व शान्ति प्रदान करने वाले महापुरुष के रूप में विख्यात हुए।

पिता ने इन्हें बाल्यकाल से ही ऊँचे संस्कार दिये। पिताजी स्वयं अत्यन्त धार्मिक विचारों वाले तथा तपस्वी महापुरुष थे। इन्हें वे 4–5 वर्ष की अवस्था में ही गाँव के पास नहर पर ले जाकर स्नान कराते तथा अपने साथ ही गायत्री मंत्र के जाप से बिठा देते थे। प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था घर पर ही कर दी थी। तत्पश्चात् हरियाणा व पंजाब के कई विद्यालयों में अध्ययन कराते रहे। अन्त में ऊँची शिक्षा के लिए इन्हें पंजाब के लाहौर में आचार्य विश्व–बन्धु जी के संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश दिलाया। आचार्य जी बड़े ही विद्वान तथा तपस्वी

धर्मात्मा महापुरुष थे। यहाँ पर कई वर्षों तक संस्कृत का अध्ययन किया। किन्तु भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी इन्हें बार-बार आकर्षित करते रहे। अन्ततोगत्वा वैराग्य की लहरें उमड़ने लगीं। विद्यालय छोड़कर श्री वृन्दावन धाम आ गये और भगवान के दिव्य लीला स्थलों व मन्दिरों के दर्शन करते हुए आनन्दित होते रहे। भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी की कृपा से अल्पायु में ही योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन प्राप्त किये और योग मार्ग में प्रवेश कर समाधि में लीन रहने लगे। ऋषिकेश आश्रम में रहते हुए वैराग्य के भाव दृढ़ होने लगे। अब आप प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति मार्ग में आरूढ़ होने का विचार बनाने लगे। किन्तु अन्तर्यामी श्री प्रभुजी ने इन्हें ठीक मौके पर जाने से रोक दिया। एक पत्र में उन्होंने लिखा था 'चिरंजीव! हम बस्तियों में रहकर योग विद्या का प्रचार कर रहे हैं और तुम जंगलों में जाने की तैयारी कर रहे हो। यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है। अभी हमने तुमसे बहुत काम लेना है। अतः हिमालय की ओर जाने का विचार त्याग कर हमारी आज्ञाओं का पालन करो।' अपने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए वनों में जाने का विचार त्याग दिया।

श्री प्रभुजी की आज्ञा से योग पिपासुओं को 'शक्तिपात दीक्षा प्रणाली' से दीक्षा देने लगे। साधकों में अद्भुत रहस्यमयी क्रियायें स्वतः होने लगीं। ध्यान की ऊँची-ऊँची स्थितियाँ प्राप्त होने लगीं। गुरुदेव शिष्यों का एक बड़ा झुण्ड इकट्ठे करने में रुचि नहीं रखते थे न ही प्रचार के माध्यमों से ख्याति चाहते थे। योग जिज्ञासु के धैर्य एवं श्रद्धा को परख कर कई वर्षों के बाद योग दीक्षा प्रदान करते थे। वस्तुतः अच्छे संस्कार युक्त साधक ही योग में आगे बढ़ पाते हैं। जिनके अच्छे संस्कार नहीं हैं शक्तिपात के बावजूद भी उनका पतन देखा गया। ऊर्वरक भूमि में बीज खाद डालने पर ही उत्तम फसल हो सकती है। ऊसर भूमि में डाला गया बीज अंकुरित नहीं हो पाता। मन्द संस्कारी व्यक्ति कदाचित् गुरुचरणों तक पहुँच भी जाये तो वहाँ भी उसे माया के ही दर्शन होते हैं। फलतः श्रद्धा बन नहीं पाती। उत्कृष्ट संस्कारवान व्यक्ति को गुरुदेव स्वतः ही खींच लेते हैं अपनी व्यापक सत्ता का परिचय देते हुए स्वप्न या ध्यान में दर्शन दे जाते हैं। साधक दिव्य दर्शन पाकर आनन्दित रहने लगता है धीरे-धीरे प्रभु का चरण शरण मिल जाता है। सद्गुरु चरण मिल जाने पर साधक आत्म विभोर हो उठता है। जन्मों से उसे जिस वस्तु की तलाश थी वह उसे मिल जाती है। उसे अब सब कुछ मिल गया। 'भुक्ति-मुक्ति प्रदातारम् तस्मै श्री गुरवे नमः' गुरुदेव तो सांसारिक भोग्य वस्तु भी प्रदान करते हैं उसे मुक्ति भी दे देते हैं। गुरुदेव जब 18-20 वर्ष के ही थे

उस समय ही आपको चित्त निर्माण आदि सिद्धि स्वायत्त थी अगढ़धत्ता के प्रसंग में आपने स्वयं ही इस तथ्य का उद्‌घाटन किया है। श्री प्रभुजी ने गुरुदेव से एक बार कहा था—तुम्हें श्री वृन्दावन धाम के वास के समय ही 'प्रभु' ने सारी शक्तियाँ दे दी हैं अतः तुम योग विद्या के प्रचार में लग जाओ।

सन् 1938 में श्री महाप्रभु जी के तिरोधान के बाद श्री गुरुदेव जी श्री सिद्धगुफा सवांई धाम के दर्शनों के लिए आये। नितान्त एकान्त व सुरम्य स्थान को देखकर आनन्दित हो गये। स्थान की दिव्य छटा को देखकर आपने अपने योग प्रचार के कार्य के लिए इसे ही कार्यक्षेत्र चुन लिया। साधकों को शक्तिपात दीक्षा प्रदान की। रोगी व्यक्तियों को अपने नेति धोति आदि षट्‌कर्म क्रियाओं का अभ्यास कराया एवं जीवन तत्त्व साधन की क्रियाओं को कराना प्रारम्भ किया। इन क्रियाओं का अद्‌भुत लाभ मिलने लगा। सभी बीमार जो असाध्य से असाध्य भी आते गुरुदेव के संकल्प से स्वस्थ होकर ही घर लौटते थे।

ध्यान योग की दीक्षा संस्कारी साधक स्वयं चमत्कारिक तरीके से आकर लेते। इनमें रघुनन्दन प्रसाद टाट वाला का नाम उल्लेखनीय है। भगवान् शिव की आज्ञा से वे गुरुदेव से योग दीक्षा लेकर साधना में लगे। तीव्र तपश्चर्या एवं गुरु भक्ति के फलस्वरूप वाक्‌सिद्धि एवं दिव्य दृष्टि जैसी सिद्धियाँ प्रकाशित होने लगीं। इसी प्रकार से जम्मू कश्मीर का संसार सिंह दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगी हुए हैं। कई गुमनाम साधक कन्दराओं में साधनारत हैं। पाकिस्तान की सीमा पर गुलमर्ग–खिलमर्ग की तरफ गुरुदेव का एक शिष्य साधु रहा करता था। एक बार वाराणसी के गुरुभाई प्रमोद एडवोकेट और विन्ध्यवासिनी भाई उस क्षेत्र में घूमने गये तो अचानक वह योगी इनके सामने आकर 'जयगुरुदेव' कहने लगा। यह आश्चर्य में पड़ गये। इस नितान्त जंगल में यह कौन हो सकता है। उस साधु ने कहा—मैं भी योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज का शिष्य हूँ। उनकी आज्ञा से साधना में लगा हुआ हूँ। वे मेरी हर प्रकार से रक्षा करते रहते हैं। उस साधु ने गद्‌गद् कण्ठ से गुरुदेव की शक्ति व महिमा का गुणगान किया।

आपने कई प्रान्तों में योग आश्रमों की स्थापना की। वहाँ पर निःशुल्क योग की क्रियायें, आसन, प्राणायाम आदि सिखाये जाते हैं और बीमार व्यक्ति साधन से स्वस्थ होकर योग की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। योग विद्या को गुरुदेव ने कभी बेचा नहीं अर्थात् कभी फीस नहीं ली गई। नेति आदि भी निःशुल्क दिये व सिखाये जाते थे। आज भी वही परम्परा चल रही है। 'सन्तु सन्तु निरामयाः' की भावना को गुरुदेव ने हमेशा सामने रखा है।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

योग योगेश्वर अनन्त श्री विभूषित चन्द्रमोहन जी महाराज

अपने देश में कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन हुए हैं उनमें कई बार इनकी अध्यक्षता रही है। 1986 में भी विश्व योग सम्मेलन में आप साधना–सत्र के अध्यक्ष थे। आप श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ योगी रहे हैं यही कारण है कि सैद्धान्तिक और अन्तरंग योग के ज्ञाता होने के कारण आपकी छवि व व्यक्तित्व अन्यों से विशिष्ट होती थी। योग के दुरूह सिद्धान्तों को आप बहुत ही सरल सुबोध भाषा में बता कर योग सिद्धान्तों को साधकों में कूट–कूट कर भर देते थे। योग के सिद्धान्तों को सरल ढंग से समझाने के लिए आपने 'योग सिद्धान्त' नामक यौगिक पुस्तक के दो खण्ड प्रकाशित कराकर योग साधकों का बड़ा ही उपकार किया है। धन संग्रह का आपका कभी उद्देश्य नहीं रहा। चन्दा या फीस के आप हमेशा विरोधी थे। आप कहा करते थे–यहाँ आश्रम में जो कुछ भी है तुम लोगों का 'तुम लोगों के लिए ही है। हमारा इसमें कुछ भी नहीं है। हम तो निमित्त मात्र हैं श्री प्रभुजी ही करण कारण हैं।'

इस प्रकार से गुरुदेव निःस्पृह भाव से ही कर्म करते थे। अपने शिष्यों के लिये आप कल्पतरू हैं, उनके चरण तल में बैठकर जो भी कामना की जाती है सभी पूरी होती है। 'प्रणमामि गुरुम् गुरु कल्पतरूम्' कल्प वृक्ष रूप गुरुदेव को हम सदा ही नमस्कार करते हैं। आपके चिन्तन मात्र से जीवन की कठिनाइयाँ व दुःख दूर हो जाते हैं। आप अपने शिष्यों की अज्ञानग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं इसलिए ही संसार में आप सर्वबन्ध होते हैं।

योग शब्द शक्ति का पर्याय है। जो अपने जीवन को योगमय बना लेता है उसी का जीवन दिव्य बन जाता है। तन, मन व बुद्धि की शुद्धि योग साधना से हुआ करती है। आत्म–साक्षात्कार का प्रमुख साधन योग को ही माना गया है। आज गुरुदेव के लाखों शिष्य–प्रशिष्य योग साधना में आरूढ़ हैं और उज्जवल व दिव्य जीवन की ओर अग्रसर हैं।

करुणामूर्ति श्री गुरुदेव का 112 वाँ प्राकट्य दिवस उनके सभी आश्रमों में विजयादशमी के दिन बड़े ही धूमधाम से मनाया जा रहा है। इस परम पावन वेला पर गुरुदेव के पावन चरणों में सभी शिष्यों का कोटि–कोटि नमन है।

श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा

–डॉ. विजय सिंह

छियासीवें अध्याय में राजा परीक्षित ने भगवान शुकदेव जी से पूछा–भगवान! मेरे दादा अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलराम जी की बहन सुभद्रा जी से किस प्रकार विवाह किया? श्री शुकदेव जी ने कहा–एक बार तीर्थयात्रा करते हुए अर्जुन प्रभास क्षेत्र पहुँचे। वहाँ उन्होंने सुना कि सुभद्रा का विवाह बलराम जी दुर्योधन से करना चाहते हैं। इसमें वसुदेव जी तथा श्रीकृष्ण जी का सहमत नहीं है। वे सुभद्रा को पाने हेतु त्रिदण्डी वैष्णव वेष धारण कर द्वारका पहुँचे तथा वर्षाकाल के चारमास द्वारिका में रहें। बलराम जी ने उनका खूब सम्मान किया। उन्हें यह पता न चला कि यह अर्जुन है। बलराम जी के आमंत्रण पर भोजन करते हुए अर्जुन ने परम सुन्दरी सुभद्रा को देखा। उन्होंने उसे पत्नी बनाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। अर्जुन के सौन्दर्य को देख मुग्ध हो गयीं और तनिक मुस्कान के साथ लजीली चितवन से उन्हें देखने लगीं।

एक बार सुभद्रा जी देव–दर्शन के लिये रथ पर सवार होकर द्वारका–दुर्ग के बाहर निकलीं। श्रीकृष्ण के संकेत पर अर्जुन ने सुभद्रा जी का हरण कर लिया। हय समाचार पाकर बलराम जी अत्यन्त क्रुद्ध हुये परन्तु भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें शांत किया। इसके बाद बलराम जी ने प्रसन्न होकर वर–वधू के लिये बहुत धन–धान्य, हाथी, रथ, घोड़े और दास–दासी दहेज में भेजे।

भगवान शुकदेव जी कहते हैं–परीक्षित्! एक बार भगवान कृष्ण विदेह की राजधानी मिथिला गये। उनके साथ नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यास, परशुराम, असित, आरुणी, मैं (शुकदेव), बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय, च्यवन आदि ऋषि भी थे। जाने का प्रयोजन मिथिला का भगवान का परमभक्त श्रुतदेव एवं उन्हीं के समान भक्तिमान मिथिला नरेश वाहुलाश्व का मानस आमन्त्रण था। साथ ही त्रिलोकी गुरु भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन से लोगों की अज्ञान दृष्टि नष्ट हो गयी। नर–नारियों को तत्वज्ञान का उपदेश भी मिलता रहा।

मिथिला नरेश वहुलाश्व और श्रुतदेव जगतगुरु भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में गिकर प्रणाम किया और दोनों ने ही एक साथ हाथ जोड़कर मुनि–मण्डली के सहित भगवान श्रीकृष्ण को आतिथ्य ग्रहण करने के लिये निमंत्रित किया।

स्वानुग्रहाय सम्प्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुम्।
मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयो पेततुः प्रभो।।24।।

अ. 86 स्कं. 10

भगवान् श्रीकृष्ण दोनों की प्रार्थना स्वीकार करके दोनों को ही प्रसन्न करने के लिये एक ही समय पृथक्–पृथक् रूप से दोनों के घर पधारे और यह बात एक–दूसरे को मालूम न हो सका कि भगवान मेरे घर के अतिरिक्त और कहीं भी जा रहे हैं।

भगवांस्तदमिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया।
उभयोरविशद् गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः।।26।।

अ.86 स्कं. 10

राजा वहुलाश्व भगवान श्रीकृष्ण एवं समस्त ऋषियों को उत्तमोत्तम आसन पर विराजमान कराया। विधिवत् सबका पूजन करके, उन्हें भोजन कराया। तद्पश्चात् राजा वहुलाश्व भगवान श्रीकृष्ण के चरणों को गोद में लेकर सेवा करते हुए बोले–प्रभो! आप अचिन्त्य, अनन्त ऐश्वर्य और माधुर्य की निधि हैं। सबके चित्त को अपने में खींचने वाले परमब्रह्म हैं। आपका ज्ञान अनन्त है। संसार में शांति हेतु आप ही नारायण ऋषि के रूप में तपस्या कर रहे हैं। आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है। प्रभो! आप कुछ दिन मुनि–मण्डल सहित हमारे यहाँ निवास करिये। भगवान श्रीकृष्ण ने राजा बहुलाश्व की प्रार्थना स्वीकार करके मिथिला में कुछ दिन तक रहे।

उधर उसी समय आनन्द विहवल श्रुतदेव ब्राह्मण भगवान श्रीकृष्ण एवं मुनियों के स्वागत अपने वस्त्र उछाल–उछाल नाच कर, कर रहा था। वह हर्षातिरेक से मतवाला हो रहा था। उसने फल, गन्ध, सुवासित जल, तुलसी, कुश, कमल आदि से सबकी पूजा आराधना की। सबको सात्विक अन्न से भोजन कराकर। श्रुतदेव ने कहा–प्रभो! आप व्यक्त–अव्यक्त रूप प्रकृति और जीव से परे पुरुषोत्तम हैं। मुझे आपने आज ही दर्शन दिया हो, ऐसी बात नहीं है। जब से आपने अपनी शक्तियों द्वारा जगत की रचना करके आत्मसत्ता के रूप में इसमें प्रवेश किये हैं, तभी से हम आप में मिले हुये हैं।

नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपुरुषः।
यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया।।44।।

अ. 86 स्कं. 10

स्वयं प्रकाशमान प्रभो! हम आपके सेवक हैं। आप आज्ञा करिये, हम आपकी क्या सेवा करें? नेत्रों के द्वारा आपका दर्शन होने तक ही जीवों का क्लेश रहता है। आपका दर्शन होते ही सभी क्लेशों का समूल नाश हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा–प्रिय

श्रुतदेव! ये बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तुम पर अनुग्रह करने के लिये ही यहाँ पधारे हैं। इनके चरण धूल लोकों को पवित्र करने वाले हैं। देवता, पुण्यक्षेत्र और तीर्थ आदि तो दर्शन, स्पर्श और अर्चन आदि से बहुत दिनों में पवित्र करते हैं। यही नहीं देवता आदि में जो पवित्र करने की शक्ति है, वह भी संतों की दृष्टि से ही प्राप्त होती है। संत पुरुष अपनी दृष्टि से ही सबको पवित्र कर देते हैं।

देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शन स्पर्शनार्चनैः।
शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया।।52।।

अं. 86 स्कं. 10

इसलिये श्रुतदेव! तुम इन ब्रह्मर्षियों को मेरा ही स्वरूप समझकर पूरी श्रद्धा से इनकी पूजा करो। ऐसा करने से साक्षात् मेरा पूजन हो जावेगा। श्रुतदेव ने भगवान एवं ऋषियों का एकात्म भाव से आराधना किया तथा उनकी कृपा से भगवत्स्वरूप को प्राप्त हो गया। यही गति राजा बहुलाश्व को भी प्राप्त हुआ।

एक समय की बात है, देवर्षि नारद सनातन ऋषि भगवान नारायण का दर्शन करने बदरिकाश्रम गये। भगवान नारायण कलापग्रामवासी सिद्ध ऋषियों के बीच बैठे हुये थे। उस समय नारद जी ने प्रणाम करके बड़ी नम्रता से सगुण-निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप सम्बन्धित प्रश्न भगवान से किया।

भगवान नारायण ने कहा-नारद जी! जब तुम मेरी श्वेत द्वीप में अनिरुद्ध-मूर्ति का दर्शन करने गये थे। उस समय जन लोक में ब्रह्म सत्र हुआ था। सनन्दन को वक्ता बनाकर शेष भाई श्रोता बनकर बैठ गये।

सनन्दन जी ने कहा-श्रुतियाँ जिनकी श्वास हैं वे भी उस पर ब्रह्म का यत्किंचित् वर्णन कर पाती हैं। उस ब्रह्म को ऋषियों ने प्राप्त करने के अनेक मार्ग बताये हैं। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय इन पंच कोशों में रहने वाला "मैं" स्वयं ब्रह्म ही है। स्थूल दृष्टि वाले जो हैं, वे मणिपूरक चक्र में ब्रह्म की उपासना अग्निरूप में करते हैं। अरुणवंश के ऋषि हृदय में आपके परम सूक्ष्मरूप दहर ब्रह्म की उपासना करते हैं। प्रभो! हृदय से ही आपको प्राप्त करने का श्रेष्ठ मार्ग सुषुम्ना नाड़ी ब्रह्मरंध तक गयी है। जो उस परमज्योर्तिमय मार्ग को प्राप्त कर लेता है, वह जन्म-मृत्यु के चक्कर में नहीं पड़ता।

तत् उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं।
पुनरिह यत् समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे।। 18 ।।

अ. 86 स्कं. 10

प्रभो! योगी यती अपने प्राण, मन और इन्द्रियों को वश में करके दृढ़ योगाभ्यास द्वारा

हृदय में आपको ध्याते हैं। परन्तु आश्चर्य यह है कि उन्हें जिस परम पद की प्राप्ति होती है, उसी की प्राप्ति उन शत्रुओं को भी हो जाती है, जो आपसे वैर–भाव रखते हैं। स्मरण तो सतत् वो भी करते ही हैं। भगवन! वे स्त्रियाँ जो अज्ञानवश आप में कामभाव से आसक्त रहती हैं, उन्हें भी वही परमपद प्राप्त होता है जो श्रुतियों को प्राप्त है। आप समदर्शी हैं।

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढ़योगयुजो हृदि यन्मुनय,
उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात्।
स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो,
वयमपि ते समाः सनदृशोऽङ्घ्रिसरोज सुधाः।।23।।

अ. 87 स्कं. 10

अजन्मा प्रभो! जिन योगियों ने अपनी इन्द्रियों और प्राणों को वश में कर लिया है, वे भी, जब गुरुदेव के चरण कमलों की शरण न लेकर उच्छृङ्खल तथा चंचल मन–तुरंग को अपने वश में करने का प्रयन्त करते हैं, तब वे सफल नहीं होते। उन्हें बार–बार खेद और सैकड़ों विपत्तियों का सामना करना पड़ता है, केवल श्रम और दुःख ही उनके हाथ लगता है। उनकी ठीक वही दशा होती है, जैसे समुद्र में बिना कर्णधार की नाव पर यात्रा करने वाले व्यापारियों की होती है। अतः गुरु की अनिवार्य आवश्यकता है।

विजितह्रषिकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं,
य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः।
व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं,
वणिज इवाय सन्त्यकृतकर्णधर जलधौ।।33।।

अ. 87 स्कं. 10

श्रुतियों ने जो भगवान की स्तुति की है उनका वर्णन सनन्दन ऋषि ने तात्विक विवेचना किया जिसे भगवान नारायण ने देवर्षि नारद जी एवं कलापि निवासी सिद्धों को उपदेश दिया। उन्होंने कहा–नारद! सनकादि ऋषि आकाश गामी महात्माओं ने समस्त वेद, पुराण और उपनिषद् का रस निचोड़ लिया है। तुम भी श्रद्धा के साथ इस ब्रह्मात्मविद्या को धारण करो और स्वच्छन्दभाव से पृथ्वी में विचरण करो। यह विद्या मनुष्यों की समस्त वासनाओं को भस्म कर देने वाली है। देवर्षि नारद ने कहा–भगवन्! आप सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। श्री नारद जी वहाँ से चलकर भगवान वेदव्यास के आश्रम पर आये। वहाँ जो कुछ भगवान नारायण के मुख से सुना था उसे मेरे पिता व्यास जी को सुनाया। अतः भगवान का चिन्तन निरन्तर करते रहना चाहिये।

।। ॐ नमो श्री रामलाल प्रभु जी प्रब्रह्मणे नमः।।

लीलाधारी की लीलाऐं...(द्वितीय)

जगदीश राए बंसल ''अधम'' मो. 9212434003 नई दिल्ली

गतांक से आगे :

गुरु माता का आल्हादिताशीर्वाद—(द्वाराश्री रघुनन्दन सूद) मेरे पिताजी के देहावसान के कुछ पश्चात् मेरी माता श्री ने मुझे अपने भतीजे के पास अमृतसर भेज दिया। अगले ही दिन मैं महासिद्धियों के स्वामी भाग्य विधाता प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की जन्म स्थली पर परम पुज्यनीया गुरू माता श्रीमती भागवन्ति जी के दर्शनार्थ भाईयों वाली गली में चला गया। जैसे ही मैंने गुरु माता जी को दण्डवत प्रणाम किया उनका प्यार भरा हाथ मेरे सिर पर आ पहुँचा। स्वत: ही मेरे नयन झरने लगे, गला भर आया, मेरी वाणी का स्वर रुक गया। परिणामत: मुझे नहीं पता कि मैं कितनी देर तक माता श्री के श्री चरणों में ग्रमर रहा। जब कुछ संभला तो मेरा आनन्द विभोर मन पुकार रहा था कि आहा! माता जी का यह वह वरदहस्त है–जिस हस्त के द्वारा अखण्ड मण्डलाकार जगत नियन्ता श्री प्रभु जी महाराज की चरण सेवा हुई, यह वही हस्त है कि जो श्री प्रभु जी के परम लाड़ले श्रीप्रभु जी की सेवा में अपना जीवन सफल करते रहे, उनकी सेवा इन हाथों से हुई, ये वही भाग्यशाली हाथ हैं, जिनसे त्रेतावतार में सीता माता द्वारा त्रयलोकी पुरुषोत्तम भगवान श्री राम की सेवा हुई, ये वही हाथ हैं, जिनके द्वारा द्वापर के कृष्णावतार में श्री राधा माता द्वारा श्रीकृष्ण भगवान की सेवा हुई ...इत्यादि। यह सब मेरा कोई पूर्व कृत शुभ कर्म ही होगा कि वही हाथ से गुरुमाता जी द्वारा मेरा सिर सहलाया जा रहा है—मेरा जीवन सफल हो रहा है.....।

मेरे आँसू मेरे कहने से बाहर हो चले थे। मेरा मन अनवरत् पुकार रहा था कि काश! चन्दा मामा की शीतलता–गंगा मैय्या की पवित्रता–पृथ्वी की सहिष्णुता–सागर की गम्भीरता और कुसुम की कोमलता जैसा ये देदीप्यमान मर्मज्ञ हाथ कल्प वृक्ष की भाँति मेरे सिर पर स्थाई रूप से बना रहे....।

मैं दण्डवत रोया श्री चरणों में, टपका माँ का प्यार।
आत्मा परमात्मा की बात हुई, बिन पत्री बिन तार।।

गुरु माता का त्याग—सन् 1938 में श्री प्रभु जी हिमालय प्रस्थान से पूर्व जो 20–25

रु. मासिक गुजारा भत्ता देने की आज्ञा योग ट्रस्ट साधन आश्रम को दे गए थे, माता जी आज भी अपना निर्वाह उसी राशि से कर रही हैं। किसी भाई–बहिन का एक पैसा तक नहीं स्वीकार करती है। इतना ही नहीं आश्रम के भक्त जनों के साथ पंक्ति में बैठकर ही भोजन प्रसाद ग्रहण करती है। अखिलात्मा श्रीकृष्ण भगवान गीता में अर्जुन से कहते हैं कि 'जो मनुष्य आत्मा में ही रमण करने वाला है और आत्मा में ही तृप्त तथा आत्मा में ही सन्तुष्ट है उसके लिए कोई कर्त्तव्य नहीं रहता 5/17

ऐसी देदीप्यमान माता श्री के चरणों में कोटि–कोटि प्रणाम।

श्रीमती मनोरमा को दिव्य अनुभव–(मनोरमा सूद पत्नि श्री रघुनन्दन सूद के शब्दों में) यह बात नौ जनवरी सन् 1966 की है। हमारे घर चन्दीगढ़ में आदरणीय प्रो. कपूर जी द्वारा हवन व सत्संग आदि का प्रोग्राम हुआ। इस शुभ अवसर पर आनन्द कन्द प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की अपार कृपा से गुरुदेव योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा दीक्षित साधकों में से पाँच भक्तों का ध्यान लग गया। हवन के पश्चात् सर्व समर्थ्य अन्तर्यामी श्री प्रभु जी की दिव्य आरती हुई। मैं एक तरफ खड़ी एक भक्त जी को देख रही थी, जो हाथ जोड़े खड़े–खड़े ध्यानमग्न हो रहे थे। वहाँ उपस्थित संगत ने उसे बिठाने की बहुत कोशिश की ताकि वह गिर ना पड़ें, मगर उसकी टांगे तो लकड़ी समान हो गई, कोई अंगद के पैर की तरह उसे हिला भी न सका।

आरती पश्चात् मेरे हाथ पैर पत्थर होने लगे और आँखें बन्द होने लगीं। मैं चरणामृत प्रसाद भी न ले सकी। मुझे दिव्य तेज प्रकाश दिखाई दिया। यह तेज चन्द्रमा की भाँति शीतल था। उस दिव्य लुभायमान तेज में मैंने आनन्द कन्द जगत नियन्ता योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज को जटाधारी रूप का दर्शन किया पश्चात् वही रूप मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, अखिलानन्द भगवान श्रीकृष्ण, श्री गुरुनानक देव जी, गौतम बुद्ध और लौड करिशट.... आदि रूपों में बारी–बारी दर्शन होता रहा। फिर उस दिव्य प्रकाश में देखा कि जटाधारी श्री प्रभु जी मुझे बुला रहे हैं। मैंने कहा कि मैं आपके पास नहीं आऊँगी। श्री प्रभु जी बोले कि 'तुम्हें कौन सा रूप अच्छा लगता है?' मैंने कहा कि मुझे तो श्रीकृष्ण जी अच्छे लगते हैं, तो प्रभुजी ने अपने मुँह पर हाथ फेर कर दाढ़ी हटा ली और मोर मुकुट धारी श्रीकृष्ण बन कर मेरे सामने खड़े हो गये। कृष्ण रूप देख कर मैं खुशी–खुशी आगे बढ़ी तो देखा कि उनका वही जटाधारी रूप है। वे मुझे उदास देख कर पुनः श्रीकृष्ण बन गए। मैं भगवान श्रीकृष्ण की उँगली पकड़कर उनके साथ चल दी। रास्ते में वे अपना रूप बदल–बदल कर दिखाते रहे। जब वे कृष्ण रूप में होते तो मैं उनकी

अँगुली पकड़ लेती अन्यथा छोड़ देती।

मैंने कहा आप मुझे साधु रूप में अच्छे नहीं लगते तब वे बोले अच्छा तो जाओ उधर श्रीकृष्ण के पास जाओ। जब मैं भगवान श्रीकृष्ण के पास जाने लगी तो मुझे वहाँ भयंकर सर्प दिखाई दिए। मैं बहुत डर गई। तब श्री प्रभु जी खिल खिलाकर हँसे और मुझे आगे लेकर चले। रास्ते में श्री प्रभु जी ने मुझे कई मन्दिर, पर्वत दिखाए। फिर एक बर्फीली पहाड़ी पर ले गए। वहाँ एक छोटे से मकान में श्री प्रभु जी मेरे साथ लुका–छुपी खेलते रहे और गोदी में बैठा कर खूब लाड़–प्यार करते रहे। मैंने श्री प्रभु जी से कहा कि मुझे भूख लगी है। श्री प्रभु जी मुझे एक स्थान पर ले गए जहाँ बहुत सारी खाने की थालियाँ भरी थीं। लेकिन मुझे मात्र एक गिलास पानी ही दिया। बोले, "यदि हमने तुझे खाना खिला दिया तो तुम यहाँ कभी नहीं आओगी। अब श्री प्रभु जी मुझे कभी दरवाजे के बाहर–कभी भीतर घुमाते रहे। मैंने फिर कहा मुझे बहुत भूख लगी है, घर जाना है, तो बोले–"अच्छा जाओ, जो व्यक्ति तुम्हें सबसे पहले मिले उससे आशीर्वाद ले लेना।" फिर मैं उस स्थान से नीचे उतरने लगी तब मुझे प्रो. कपूर जी ऊपर आते दिखाई दिए। मैंने उनके चरणों में प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त किया और स्वयं को अपनों के मध्य पाया अर्थात् ध्यान खुल गया।

नजारे बहुत थे पर नजर छोटी थी।
सीख बहुत थी पर अक्ल मोटी थी।।

अब मैं दोनों समय अखिल कोटि ब्रह्माण्डनायक, जगत नियन्ता, गुरुओं के गुरु प्रभु श्री रामलाल जी महाराज जी की दिव्य आरती एवं पूजा करने लगी। एक दिन ध्यान में मुझे गौरी पुत्र श्री गणेश जी महाराज के दर्शन हुए। एक दिन मुझे मोर–मुकुट वाले भगवान श्रीकृष्ण के बाल रूप में ग्वालों के संग खेलते हुए के दर्शन हुए। एक दिन मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम धनुष–बाण लिए अपने अनुज श्री लक्ष्मण व गुरुदेव विश्वामित्र जी के दर्शन हुए तथा जनक दुलारी माता सीता ने बालहंसिनी की चाल चल कर श्री राम जी के गले जय माला पहनाई के दर्शन हुए। इस प्रकार मुझे दैनिक दर्शन होते रहे। एक दिन 13 जनवरी 1966 को आरती के समय ध्यान में बहुत ही दिव्य प्रकाश दिखाई दिया। इस तेज पुञ्जय प्रकाश में मुझे त्रिजगपावन प्रभु श्री राम लाल जी महाराज दिखाई दिए। मेरे द्वारा यह कहने पर कि मुझे श्रीकृष्ण भगवान अच्छे लगते हैं, श्री प्रभु जी ने एक लीला रची कि भगवान राम और सीता माता मेरे पास खड़े हैं। वे मुझ से पूछ रहे हैं कि "हम अच्छे नहीं लगते हैं न?" और दोनों की गर्दन भी "ना–ना" के संकेत कर रही थी। इनके साथ–साथ श्री प्रभु जी भी "ना–ना" कहते गर्दन भी ना–ना में हिला रहे थे। इसी प्रकार

चन्द्रधारी भगवान शिव–पार्वती भी "ना–ना" पुनरावर्ती करते रहे। अन्त में देखा कि मोर मुकुट पीताम्बर धारी भगवान श्रीकृष्ण राधा–रानी जी खड़े हैं और मुझ से पूछ रहे है कि "हम अच्छे लगते हैं न?" साथ–साथ अपनी गर्दन भी "हाँ–हाँ" में हिला रहे हैं। पश्चात् सारे भगवान इकट्ठे आते हैं और अपनी–अपनी गर्दन "हाँ–हाँ" में हिलाते हैं। श्री प्रभु जी मुस्करा रहे होते हैं। इस सारे प्रकरण में दिव्य तेज प्रकाश ज्यों का त्यों बना रहता है।

जिसने इन यादों को दिल में बसा लिया।
सोई हुई तकदीर को उसने जगा लिया।।

अब मैं श्री प्रभुजी से कह बैठी कि आप मुझे अकेली छोड़कर क्यों चले जाते हो? श्री प्रभु जी मुस्काय बोले "हमें और काम भी तो करने होते हैं। हाँ, हम अपने भक्तों को निराश नही करते। कोई हमारा चित्र बना कर अपना मन बहला लेता है। मैंने ललीत स्वर से प्रार्थना की कि आप मुझे अपना चित्र दे दें। परन्तु चित्र भगवान श्रीकृष्ण के रूप में होना चाहिए। श्री प्रभु जी बोले "हमारे चित्र पर मुकुट लगा लो।" मैंने कहा कोई देखेगा तो कहेगा कि किसी सरदार जी को मुकुट लगाकर फोटो खेंच लिया है। मुझे बाल कृष्ण रूप में मनमोहक चित्र चाहिए कि मेघ समान श्यामल शरीर–पतली कमर में पीली–पीली चुन्नी–मस्तक पर मोर मुकुट–लाल लाल होठ–माथे पर तिलक–मोटी–मोटी काजरियाई आँखें–हाथों में बाँसुरी–चिकने घुँघराले बाल और पैरों में धोती नुमा...इत्यादि। श्री प्रभु जी मुस्काए और बोले, "अच्छा–समय आने दो, तुम्हें हमारा यह चित्र मिल जाएगा।" मैं बोली आप मेरे पास बाल रूप में आइएगा। श्री प्रभु जी ने पूछा "बाल रूप कैसा?" देवकी की तरह या यशोदा की तरह? मैंने कहा दोनों ठीक हैं। पश्चात् अन्तर्यामी श्री प्रभु जी ने मुझे प्यार भरा आशीर्वाद दिया और मेरा ध्यान टूट गया।

शिमला में राम नवमी की घटना–(द्वारा श्रीमती मनोरमा) सन् 1966 में मंगलमूर्ति योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के शुभ जन्म दिवस पर प्रो. श्री चमन लाल जी कपूर ने हमें योग साधन आश्रम शिमला (हि.प्र.) में पहुँचने का निमन्त्रण भेजा। जैसे ही हमने आश्रम में पहुँच कर सिद्धयोगाधिपति प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के श्री चरणों में सादर प्रणाम किया तो अखण्ड ज्योतिश्री प्रभु जी ने मुझे समाधिस्थ कर दिया। (आपको याद दिलाता चलूं कि आशुतोष करुणा सागर गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज कहा करते थे कि ध्यानी गुरु भक्त साधक का कर्म भोग भुगतान स्वप्न अथवा ध्यान में भी हो जाया करता है। मन्त्र जाप व ध्यान से मन में तेजस परमाणुओं का प्रवाह रहता है, यह काल भक्षिणी अजपा गायत्री है।)

आश्रम में हवन–आसन–नेती क्रिया और कीर्तन हुआ। त्रिकालदर्शी श्री प्रभुजी ने मुझे ध्यान में ही आज्ञा दी कि 'बेटी, हमें भोग शीघ्र लगा दो अन्यथा सब भोजन झूठा हो जाएगा।' मैंने अपनी बन्द आँखों से ही कटोरियों में हलवा, सब्जियाँ, पकौड़ियाँ सजाकर पूरीयों को कढ़ाई के उबलते घी में से ही अपने हाथ से उठा उठाकर थाली में रख लिया। फिर श्री प्रभु जी को भोग लगवा कर थाली का भोग मण्डारे के भोजन में मिला दिया। तत्पश्चात् संगत ने प्रभु प्रसाद का आनन्द लिया।

अड़सठ तीर्थधाम आपके चरणों में।
हे देवन के देव प्रणाम आपके चरणों में।।

मेरे हाथ की उंगलियों में कोई छाले या त्वचा पर निशान न देख कर मण्डली वाले सर्व समर्थ्य श्री प्रभु जी की कृपा लीला देख कर अचम्भित रह गए।

किस शुभाशुभ कर्म से मुझे तेरा प्यार मिला।

❀❀❀❀❀❀❀

।।श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

करुणानिकेतन गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का 112वाँ प्राकट्य दिवस 15 अक्टूबर 2021 दिन शुक्रवार को मनाया जायेगा। तब तक जैसी स्थिति होगी सब को बता दिया जायेगा। भीड़ कम हो यह प्रयास भी रहेगा ताकि कोरोना संक्रमण का भय न रहे। सभी गुरुभक्तों को गुरुदेव के पावन जन्मोत्सव पर हार्दिक बधाई एवं शुभकामनायें।

भवदीय
संपादक 'सिद्धयोग'
आचार्य दासलाल जी महाराज
श्री सिद्धगुफा संवाई, आगरा।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

गुरु चरणों में अर्पित स्वराञ्जलि

कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

(1)

किया बहुत उपकार गुरु फिर पास बुलाओ।
एक बार फिरसे कलियुग में आकर सबको समझाओ।।
नहीं तपस्वी नहीं वैरागी न ही कछु ज्ञान है।
बस कलियुग में चाहिए सबसे ही सम्मान है।।
हम अज्ञानी भूले बैठे उन सब उपदेशों को।
करम के बन्धन हमें फँसायें भूले उन संदेशों को।।
अब तो तड़प रहे भवसागर आ करके कुछ राह बताओ।
किया बहुत उपकार गुरु.....।।
कब तक रहे सहें कष्टों को, माया से अब तुम्हीं छुड़ाओ।
विकल हुए अब तड़प रहे जग में पड़े हुए।।
जैसे मीन अलग हुए जल से, तड़प–तड़प कर जान गवाएँ।
बलिहारी तुम पर गुरुवर आ करके फिर राह बताओ।।
किया बहुत उपकार गुरु.....।।

(2)

गुरुदेव तेरी महिमा सब जान गये।
देव, मनुज गन्धर्व और दुखिया।।
भले पड़े थे ले चरण की सुखिया।
आओ मिल फिर भक्ति जगायें।
गुरुदेव की मिल महिमा सब गायें।
गुरु तेरी महिमा सब जन गायें.....
अपराधी बन भटकूं नहीं।
दुखिया इस संसार में।।
योग मार्ग को फिर दोहराओ।
उसी से सब जन मुक्ति पायें।

गुरुदेव तेरी महिमा सब.....
ध्यान धारणा खूब सिखाया।
नेती धौती सब बतलाया।
भाव समाधि सहज लगाया।
इस पर हम सब इतरायें।
गुरुदेव तेरी महिमा .....
सिद्ध संवाई गाँव से किया है योग प्रचार।
शक्तिपात कर हम अधर्मों का किये तुम्हीं उद्धार।
रात्रि भर तुम्हें समझ न पायें
गुरुदेव तेरी महिमा .....

(3)

गुरुदेव तेरी अब चरण को पकड़ा
भव बन्धन से मैं हूँ अकड़ा
विषयों में अब तक हूँ जकड़ा
इन विषयों से आन छुड़ाओ
मन को अपने चरण लगाओ
भक्ति का कुछ ज्योति जलाओ
विषयों में फँस हम हैं हारे
आये हैं अब फिर द्वार तिहारे
इन विषयों से मुझे बचाओ
चरण शरण में मुझे लगाओ
मन को मेरे ना तड़पाओ
आओ–आओ गुरुवर मेरे
मेरे चित्त को शुद्ध बनाओ।
मन को अपने .....

विनम्र श्रद्धांजलि

मध्य प्रदेश ग्वालियर के वरिष्ठ गीतकार पं. राम प्रकाश अनुरागी जी का विगत 27 मई 2021 को स्वर्गवास हो गया है। प्रभुजी के अनन्य भक्त गुरुदेव से दीक्षित श्री अनुरागी जी कई प्रदेशों में हिन्दी साहित्य के अलंकरण पुरुस्कारों से सुशोभित रहे। उनकी अनेक प्रकाशित कृतियाँ है जिनमें मुख्य रूप से "तटधारा" आद्योपात महर्षि जमदग्नि एवं गीत प्यार के।

एक विशेष कृति महाकाव्य "तुलसी जीवन गाथा" जो कि अपने आप में तुलसी दास जी के जन्म से लेकर उनका हनुमान जी से मिलना और राम जी के चरणारविन्द तक लाना फिर सम्पूर्ण रूप में विलीन होना, उनकी सभी कृतियाँ, रामचरित मानस का सम्पन्न होना आदि आदि एक ही गीत में लगभग 1800 छन्दों का एक महाकाव्य है "तुलसी जीवन गाथा"।

श्री प्रभुजी की कृपा पात्र रहे अनुरागी जी अब इस संसार में भौतिक रूप से हमारे साथ नहीं रहे।

विनम्र श्रद्धांजलि।।

श्री राम।।

योग तथा उसका महत्त्व

श्री जितेन्द्रबहादुर परमार्थी 'प्रकाश' झाँसी

योग क्या है?

योग के विषय में सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि योग है क्या? इस का उत्तर हम केवल यही दे सकते हैं कि चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है। सम्पूर्ण चित्तवृत्तियों का निरोध करना और मन को स्थिरता प्राप्त करना ही योगसाधन का साध्य है। मन की स्थिरता से जो लाभ होता है उसका अनुभव निद्रा का विचार करने से हमारे ध्यान में आ चुका है। निद्रा में तमोगुण की अर्थात् अज्ञान की प्रधानता रहती है और योगसाधन जन्म चित्त की स्थिरता में सत्वगुण की विशेषता रहती है। तमोगुण मय अवस्था की अपेक्षा सात्विक अवस्था अधिक उच्च है, इसमें देने की कोई अवस्था नहीं है अर्थात् जितना स्वास्थ्य, आनन्द और बल निद्रा से प्राप्त होता है, उससे कई गुना अधिक स्वास्थ्य, आनन्द और बल मन की स्थिरता से प्राप्त होना सम्भवनीय है।

योगसाधन के मार्ग में आक्रमण करते–करते कोई लाभ नहीं होता, ऐसी भी बात नहीं है। यहाँ प्रत्येक सीढ़ी पर लाभ होते हैं और अनुभव भी आते रहते हैं। अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पाँच यमों का परिपालन करने से मनुष्य का अन्य मनुष्यों और प्राणियों के साथ यथायोग्य व्यवहार होता है। सामाजिक स्वास्थ्य के लिए इनकी भारी आवश्यकता है।

आसनों के अभ्यास से शरीर का रुधिराभिसरण अच्छा होता है और सब स्नायुओं का आरोग्य उत्तम रहता है तथा सम्पूर्ण अंतड़ियों की गति ठीक प्रकार से होती रहती है। जो लोग जानते हैं कि रुधिराभिसरण, नसनाड़ियों की निर्मलता और अंतड़ियों की गति के साथ मनुष्य के आरोग्य का कितना घनिष्ट सम्बन्ध है, उनको कहने की आवश्यकता नहीं है कि आसनों से क्या लाभ होता है?

प्राणायाम से फेफड़ों की शक्ति बढ़ती है। रुधिर अधिक शुद्ध होता है और सम्पूर्ण नाड़ी चक्रों में चेतना उत्पन्न होती है। इसका स्वास्थ्य के साथ अत्यधिक सम्बन्ध है जिससे फेफड़े बलवान होते हैं, वह दीर्घायु हो सकता है जिसका रुधिर शुद्ध होता है उसके अन्दर रोग प्रतिरोधक शक्ति होती है, इसलिए उस के पास रोग नहीं ठहरते और वह हमेशा निरोग रहता है।

योगियों ने प्राणायाम तथा कुम्भक की शिक्षा उल्लिखित प्राणियों से ही ग्रहण की थी। उन्होंने अनुसंधान करके देखा कि किसी निर्दिष्ट समय के मध्य जिन प्राणियों के श्वांस की संख्या अल्प और अल्पायंत है वे सब दीर्घ जीवी और जिन प्राणियों के श्वांस की संख्या उतने समय में अधिक और दीर्घ है, वे अल्पायु हैं। योगियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि मनुष्य अपना श्वांस, प्रश्वांस अल्प संख्या में और अल्पायत कर सके तो अवश्य अपने निर्दिष्ट जीवन काल की अपेक्षा अधिक समय तक जीवित रह सकता है। श्वांस–संख्या और श्वांस–आयतन की अल्पता पर ही जीवों की आयु की दीर्घता निर्भर होती है। इस बात का प्रमाण विभिन्न जीवों की श्वांस संख्या और परिणाम के सम्बन्ध में तैयार की गयी निम्नलिखित तालिका प्रस्तुत करती है–

प्राणी	प्रायिक संख्या श्वांस प्रति मिनट	प्रायिक परमायु
खरगोश	38–39	8 वर्ष
कबूतर	36–37	8–9 वर्ष
बन्दर	31–32	20–21 वर्ष
कुत्ता	28–29	13–14 वर्ष
बकरी	23–24	12–13 वर्ष
बिल्ली	24–25	12–13 वर्ष
घोड़ा	18–19	18–50 वर्ष
मनुष्य	12–13	100 वर्ष
हाथी	11–12	100 वर्ष
सर्प	7–8	120–122 वर्ष
कच्छप	4–5	150–155 वर्ष

योग आसनों से चिकित्सा–

आसनों द्वारा रोग दूर करने के यत्न का नाम आसन चिकित्सा है। आसनों के अभ्यास से शरीर के रक्षा केन्द्रों को उद्दीपित करके उनके द्वारा आवश्यक जीवन–रस इस शरीर में अधिक उत्पन्न करने से यह चिकित्सा होती है।

शरीर में कई रक्षा केन्द्र हैं, जिनकी निरोगता पर शरीर का आरोग्य निर्भर है। गुदा स्थान, नाभि–स्थान, हृदय, कंठ और मस्तक इतने स्थानों में इन रक्षा–ग्रन्थियों का निवास है और आसनों के कारण इन ग्रन्थियों से अमृतरस अधिक परिमाण में सवता है

जो रोग दूर करने में सहायता करता है। परमात्मा को धन्यवाद करना चाहिये जिसने हमारे ही शरीर में आरोग्य के अनन्त साधन उपस्थित रखे हैं और प्राचीन आर्य योगियों की प्रशंसा करनी चाहिए, इसलिए कि उन्होंने उक्त साधनों की खोज करके उनका उपभोग करके यौगिक उपाय हमारे सामने सुगम रीति से रखे हैं।

मनुष्यों के शरीर में पेट ही एक ऐसा स्थान है कि जहाँ प्रायः हर एक बीमारी का प्रारम्भ होता है। इसलिये आर्यों के धर्मशास्त्र में बहुत से नियम लिखे हैं, और योग शास्त्र में भी आसनों व्यायाम बताये हैं, जिन से पेट के दोष बहुत अंश में दूर हो जायें। नीचे कुछ रोगों का वर्णन किया गया है तथा यह भी बताया गया है कि कौन से रोग के लिए कौन से आसन लाभदायक हैं।

अजीर्ण—अन्न उत्तम रीति से जीर्ण न होने का नाम अजीर्ण है। यह दोष केवल पेट का ही नहीं है। भूख की अपेक्षा अधिक खाना, जिह्वा की खुशी के लिए जैसे चाहे वैसे पदार्थ आवश्यकता से भी अधिक खाने, असमय भोजन करना, दिन में अधिक बार खाना, पहला खाया हुआ पूर्ण रीति से जीर्ण होने के पूर्व ही दूसरी बार खाना, आरोग्य रीति से पका हुआ अन्न सेवन करना, परस्पर विरोधी पदार्थों का एक समय सेवन करना, मन की अस्वस्थता की अवस्था में भोजन करना, ठीक प्रकार न चबाते हुए खाना इत्यादि अनेक कारण हैं जिन से कि अजीर्ण रोग की उत्पत्ति होती है।

आवश्यक पथ्य सम्भालने के पश्चात् पाठक प्रतिदिन कुछ समय 'सूर्यभेदन व्यायाम के लिए देंगे तो उनका अजीर्ण विकार निःसन्देह दूर हो सकता है और साथ ही साथ निम्नलिखित आसन करने से रोग का मूल ही पूर्ण रीति से दूर होगा।

अजीर्ण को दूर करने के लिए प्रति दिन निम्नलिखित आसन लाभप्रद हैं—

शीर्षासन, चक्रासन, पश्चिम–तानासन, जानुशिरासन, सर्वांगासन, ऊर्ध्व–सर्वांगासन, कर्णपीड़नासन, बद्धपद्मासन, सर्पासन, भुजंगासन, नागासन, उष्ट्रासन, मयूरासन, मत्स्येन्द्रासन, मत्स्यासन, गर्भासन, ऊर्ध्वपद्मासन।

कमर दर्द—कमर दर्द तथा पीठ के पूर्व प्रायः सोच खुलकर न आने की शिकायत रहती है। इसके लिए निम्नलिखित आसन लाभदायक हैं—

कोनासन, हस्तपादांगुष्ठासन, पश्चिमतानासन, जानुशिरासन, चक्रासन, उष्ट्रासन। इनमें पश्चिमतानासन तथा जानु शिरासन बड़ा उपयोगी है। युक्ति से उसी दर्द के स्थान पर खिंचाव उत्पन्न करने से बड़ा ही लाभ होता है।

खाँसी—जो लोग प्रतिदिन नियमपूर्वक शीर्षासन अथवा ऊर्ध्वसर्वांगासन करते हैं

उनको प्रायः कास श्वांस या खांसी आदि बीमारी नहीं सताती। इसके लिए निम्न आसन आरोग्यप्रद हैं, यह अनुभव से सिद्ध होता है–जानु शिरासन, शीर्षासन, पश्चिमतानासन, ऊर्ध्वसर्वांगासन।

जुकाम–नेती अथवा जल की नेति जो करते हैं, तथा शीर्षासन के जो अभ्यासी हैं अथवा नियमपूर्वक सूर्यभेदन व्यायाम जो करते हैं उनको जुकाम के कष्ट नहीं होते। शीर्षासन और उर्ध्वसर्वांगासन इसमें बड़े उपयोगी हैं।

दृष्टि दोष–इसके लिए शीर्षासन तथा ऊर्ध्वसर्वांगासन विशेष लाभ करते हैं।

निद्रानाश–पेट के दोष के कारण निद्रानाश प्रायः होता है। शीर्षासन विशेष उपयोगी है। सूर्य–भेदन के व्यायाम से भी चिरस्थायी लाभ होता है।

पीनस–पीनस नासिका का रोग है। नासिका द्वारा कुएं का ताजा पानी पीने के अभ्यासी से इस रोग की निवृत्ति होती है। साथ–साथ ऊर्ध्वसर्वांगासन तथा शीर्षासन करना बड़ा लाभकारी है।

बलवर्धन (अशक्तता को दूर करना)–बल बढ़ाने के लिए आसनों का सूर्यभेदन व्यायाम प्रसस्त है। ऊर्ध्वपदुमासन, उत्थित्तपद्मासन, वकासन, लोलासन, दोलासन, मयूरासन, वृश्चिकासन आदि आसन सहायक हैं।

रक्तदोष–कंठबंध, शीर्षासन और ऊर्ध्वसर्वांगासन करने से रक्तदोष दूर होता है।

श्वेत बाल–शीर्षासन और ऊर्ध्वसर्वांगासन के अभ्यास से एक साल में बाल काले होने लगते हैं।

प्रतिदिन कम से कम आधा घण्टा यह अभ्यास करना चाहिये।

सूजन–शीर्षासन एवं ऊर्ध्वसर्वांगासन करने से सूजन कम होती है। तथा जिस अवयव के अवसर के ऊपर सूजन हो, उसके लिए हितकारी आसन करने से बड़ा लाभ हो सकता है।

हृदय विकार–भूमि पर लेटकर करने के सब आसन इस विकार में किये जाते हैं। यदि पाचन दोष से इस विकार की उत्पत्ति है तो मंदवेग से सूर्य–भेदन व्यायाम करने से यह विकार हट जाता है।

बदलते मौसम की बीमारी से– बचाव व इलाज

श्री पं. रामस्वरूप शास्त्री, कायाकल्प कैंसर अनुसंधान केन्द्र सफीदों, (हरियाणा)

भारत में अन्य देशों की अपेक्षा छः ऋतुयें हैं जो अपने–अपने समय पर अपना स्वरूप प्रकट करती हैं। हमारा वर्ष बसन्त ऋतु से प्रारम्भ होता है। इसीलिए इसे ऋतुराज कहते हैं। बसन्त के बाद ग्रीष्म तथा वर्षा का आगमन होता है। इसी प्रकार बारहों महीनों में 2–2 मास के हिसाब से छहों ऋतुयें अपना क्रम रखती हैं। अर्थात् इनकी एक आवृत्ति एक वर्ष कहलाती है। यह वर्ष सूर्य और चन्द्रमा के दिनों से बनता है। कारण सृष्टि को चलाने वाले विराट् पुरुष के ये दोनों नेत्र हैं। सूर्य सोमात्मक जगत है। यह दोनों ही प्राणी मात्र में अपना विशेष स्थान रखते हैं। प्राणी निरन्तर श्वास लेता है। ये दोनों नासिकारन्ध्र सूर्य और चन्द्र हैं। प्रातः सूर्योदय के समय यदि चन्द्र स्वर चले तो शुभ सूचक है। यह दोनों निरन्तर साढ़े तीन घण्टे में बदलते रहते हैं। इसी से ठीक साढ़े तीन घण्टे में हमारा शरीर भी बदलता रहता है। और इसी अनुपात से बाल्यावस्था, जवानी तथा बुढ़ापा आता है। तथा अन्त में यह शरीर नाश को प्राप्त हो जाता है। यह क्रम प्राणी मात्र का है।

यह ऋतु परिवर्तन या यों कहें कि यह मौसम का बदलना नियमित है, जैसे सूर्योदय के बाद सायं रात्रि का आना और रात्रि के बाद सूर्योदय का होना, यह क्रम अनन्तकाल से चला आता है और चलता रहेगा। प्राणी आयेंगे और चले जायेंगे, पर यह क्रम बराबर चलता रहेगा। यही संसार का नियम है। अर्थात् एक दिन प्राणी आया है और एक दिन चला जायेगा। यह दो दिन का समय मानव को समाज सेवा, देश सेवा के लिए मिला है, इस समय को यदि अपने प्रज्ञापराध में व्यर्थ गंवा दिया तो इससे बड़ा अन्य अपराध नहीं।

इन ऋतुओं के परिवर्तन में जो मानव शरीर पर प्रभाव पड़ता है, इसे ऋतुपरिवर्तन कहते हैं। इसी को दूसरे शब्दों में मौसम का बदलना कहा जाता है। इस बदलते मौसम में प्रायः अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इनमें मुख्य प्रतिश्याय (नजला) है। यह मानव को नितान्त कष्ट देता रहता है। घास में छिपे सर्प के समान जब भी समय पाता है, अपना प्रभाव जमा बैठता है। यह हमारे शरीर में रहने वाले सूर्य की विकृति के कारण होता है।

अर्थात् नाक द्वारा हरे, पीले, सफेद रंग का लसदार पानी बहने लगता है। व्यक्ति छींकते–छींकते परेशान हो जाता है। हर समय नाक पर रूमाल रखना पड़ता है। प्रातः उठते ही छींकों का दौर शुरू हो जाता है, जब तक काफी पानी में न झड़ लें तब तक शान्त नहीं होता।

यही नजला अनेक रोगों का कारण बनता है। यदि यह सब श्वास वाहिनी पर पड़ा तो श्वास (दमा) रोग का कारण बनता है, और यदि फेंफड़ों पर पड़ा तो यक्ष्मा टी.बी. का कारण बनता है। यदि हाथ या पैर की ओर इसका आक्रमण हुआ तो मनुष्य पंगु, लंगड़ा (लकवा) अर्धांग वात का रोगी बन जाता है। यदि इसका प्रभाव हृदय की ओर हुआ तो हृदयगति अवरोध (हार्टफेल) हो जाता है। जो आज कल बहुतायत से देखा जाता है और यदि यह मलाशय की ओर गया तो मल शुष्क होकर इसी विष संचित हो कैंसर जैसे महा भयानक रोग का जन्म दाता बन जाता है। इसका ऊर्ध्वगत होना बालों को असमय में सफेद बना देता है। यदि कानों पर इसका प्रभाव हुआ तो व्यक्ति बहरा बन जाता है। आँखों को स्थिति में यह मोतियाबिन्द का कारण बनता है।

वास्तव में यह प्रतिश्याय (नजला) ही सब रोगों का मूल कारण हुआ। इसका अंकुर उदर विकार है। अर्थात्–

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।

सब रोगों का निदान मलों का कुपित होना है। अब इस निदान के बाद आप इधर ध्यान दीजिए। कार्य से पहले कारण का होना आवश्यक है। हम अपने नित्य के व्यवहार में असमय भोजन, अध्यशन, दिन भर बकरी के समान चरते रहते हैं तो आप ही बतलाइये यह इस शरीर पर अन्याय नहीं तो और क्या है। यह पेट कोई कबाड़ी की दुकान तो है नहीं कि जो जी में आया ठूस दिया।

यह जीवन बहुमूल्य है। राष्ट्र की निधी है। इसे व्यर्थ नष्ट करने का दुःसाहस न कीजिए। जिह्वा लोलुपता के कारण जो व्यक्ति अपने शरीर का ध्यान नहीं रखता वह असमय में ही काल का ग्रास बनता है। जैसे लोकोक्ति है–

बीस कठौती मट्ठा पीवै, बत्तीस रोटी खाय।
ताके मरे न रोइये, घर का दारिद जाय।।

अर्थात् जो अपने स्वास्थ्य को न देख अनाप–शनाप खाता रहता है उसके शीघ्र मरने में कोई शोक नहीं, कारण वह तो अपनी मौत को स्वयं बुला रहा है।

अस्तु, अब आप चिकित्सा की ओर ध्यान दीजिए। जो व्यक्ति अपने जीवन को सुखी स्वस्थ दीर्घजीवी बनाना चाहता है, उसे गुरोपदिष्ट नियमों का पालन करना चाहिए।

सबसे पहले शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अपनी प्रकृति के अनुकूल व्यायाम करें। योग मार्ग निर्दिष्ट 'जीवन तत्व साधन' का अभ्यास करें, जिससे शरीर निरोग रहेगा। मान लीजिए—कभी कोई रोग आ ही गया तो उसका उत्तम उपचार नेति आदि क्रियाओं द्वारा करना चाहिए। नेति प्रतिश्याय (नजला) से बचने के लिए सर्वोत्तम उपाय नेति क्रिया है। सर्व साधारण के लिए जलनेति अतिसुगम है। इसके अभ्यास से रोग मुक्ति तथा शरीर स्वस्थ रहेगा।

विधि—प्रात: नित्य क्रिया से निवृत्त हो कुछ गुनगुना पानी लीजिए। उसमें थोड़ा नमक मिला दीजिये फिर उसे चुल्लु में भरकर नाक द्वारा सुड़क जाइये। नाक साफ कर अपनी सुविधानुसार तैल या घी नाक में डालिए। यह एक सुगम उपाय है। इस क्रिया के करने से सिरदर्द, नजला, असमय में बालों का पकना, चश्मा आदि नहीं लगाना पड़ेगा। आपका जीवन सुखकर होगा। अन्य यौगिक क्रियाओं को सीखने के लिए निःशुल्क योग प्रशिक्षण केन्द्र आर.के.पुरम् सैक्टर 4 में तथा अन्य भी यौगिक केन्द्रों में सीख सकते हैं। इनसे लाभ उठाइये तथा वृथा शरीर का शोषण करने वाली दवाओं के जाल से बचिये।

मान लीजिये—यदि कोई रोग हो ही जाये तो बाजारू गोलियों पर निर्भर न रहिये जैसे बसों में या मजमे लगाकर बेचने वाले लोग 1 रु. में 10 गोली बेचते रहते हैं। यह सस्तापन आपके जीवन को घातक बना सकता है। इसलिए आवश्यकता पर किसी योग्य वैद्य या डॉक्टर से परामर्श लें।

अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल ही औषधि लीजिए जिससे आप कष्ट से बच जायेंगे। आज जो समाज की स्थिति है जिससे अस्पताल भरे पड़े हैं। आपात कालीन वार्डों में भी स्थान नहीं। इसका कारण हमारा प्रज्ञापराध है। हम अपने ही दोष से तथा इन्द्रियों के वशीभूत हो रोग भोगते हैं। इनसे बचने के उपाय युक्ताहार विहार पर ध्यान दीजिए।

नजला, सिरदर्द, उदर विकार इनकी चिकित्सा आप घरेलू तरीके से भी कर सकते हैं। इनके लिए तुलसी बनफसा का काढ़ा, उपयुक्त है। नजले के बाद खांसी हो जाती है, उसके लिए शितोपलादि चूर्ण लवंगादिवटी, एलादिवटी का व्यवहार उपादेय है। आज देहात में क्या शहरों में भी ज्वर बुखार का दौर विशेष रूप से देखने में आता है। यह बुखार इतना कष्टकर है कि जिस व्यक्ति को एक बार हुआ, तो शरीर को निचोड़ देता

है। डॉक्टर लोग इसमें कुनैन का प्रयोग करते हैं तथा सरकार की ओर से स्थान-स्थान पर बांटी जा रही है, परन्तु परिणाम शून्य है। आज की दवाओं से छिड़काव करने पर मच्छर नहीं मरता, और जहाँ यह काटता है ज्वर अवश्य आता ही है। इसके लिए आप घरेलू चिकित्सा में चोकर को ले उसमें थोड़ा नमक मिला पाव भर पानी में पका लीजिए आधा पाव रहने पर पीकर सो जाइये। पसीना आकर बुखार उतर जायेगा। परन्तु आज का मानव इन पुरानी वस्तुओं पर ध्यान न देकर सुई लगवाने में ही ज्यादा ध्यान देता है। जिससे पैसा देकर रोग खरीदा जाता है। प्रकृति के विरुद्ध चलने से कष्ट ही होगा। अपनी प्रकृति के अनुकूल उपरोक्त क्रियाओं का अवलम्बन ले स्वस्थ रहिये। विशेष पढ़ने का यदि आपको ध्यान है तो सद् साहित्य का अवलोकन कीजिए।

❀❀❀❀❀❀❀

ध्यान की विधि

जोर जबरदस्ती करके ज्यादा जप ध्यान नहीं करना चाहिए, जिससे अतिरिक्त थकावट या अवसाद का अनुभव होने लगे। उससे कभी हित का अहित हो जाता है। जप-ध्यान को क्रम से धीरे-धीरे बढ़ाना उचित है। आन्तरिकता और दृढ़ संकल्प हुआ तो प्रभु कृपा से समय आने पर सब होगा और सब मिलेगा।

खूब निष्ठा, अध्यवसाय और धैयपूर्वक जप-ध्यान करते चलो। धीरे-धीरे मन स्थिर होगा, ध्यान जमेगा, -और वह एक नशे की आदत सा हो उठेगा। एक भी दिन नहीं किया तो कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा, महा अशान्ति का अनुभव होगा, जैसा नशाखोरों को नशे की वस्तु न मिलने पर होता है। तब सभी फीका-फीका लगेगा। इच्छा होगी, सदा उसी में ही डूबा रहूँ।

—स्वामी विरजानन्द

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

जीवन तत्व साधन से गठिया रोग निवारण

—अन्तू राम यादव, प्रयागराज

प्रातः स्मरणीय योग योगेश्वर अनन्त विभूषित श्री गुरुदेव भगवान के युगल चरणों में नमन करते हुए आइये आज जीवन तत्व साधन के महत्त्व पर कुछ चर्चा करें। हमारे आपके दादा गुरुदेव सिद्धों के महासिद्ध सिद्धेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज सिद्धों की महानगरी हिमालय से अनेक निर्माणकाय द्वारा इस धरा पर आये और जन–कल्याणार्थ अनेकानेक महान कार्य किये। उन महान कार्यों में जीवन–तत्व–साधन उनकी एक अनुपम अमर देन है। जीवन तत्व साधन सभी प्रकार के आसनों का एक समुच्चय है। इसमें मात्र नौ क्रियायें हैं परन्तु इन्हीं नौ क्रियाओं में सभी आसनों का समावेश है। ये नौ क्रियायें देखने और करने में तो अत्यन्त सरल लगती हैं परन्तु इनका परिणाम अत्यन्त प्रभावशाली और विलक्षण होता है। इन क्रियाओं को बड़ी आसानी से बच्चे, युवक, वृद्ध, स्त्री–पुरुष सभी कर सकते हैं।

श्री सिद्ध गुफा सँवाई, ऐत्मादपुर, आगरा वाले अपने मुख्य गुरु–धाम में श्री गुरुदेव भगवान के समय में अनेक असाध्य ऐसे रोगी आते थे जिनके रोगों को डॉक्टरों द्वारा लाइलाज घोषित कर दिया गया होता था परन्तु श्री गुरुदेव भगवान, जीवन तत्व साधन एवं अन्य यौगिक क्रियाओं के माध्यम से उन रोगियों के लाइलाज रोगों को ठीक करके उन्हें पूर्ण रूप से स्वस्थ कर दिया करते थे। अनेक असाध्य रोगी रोते हुए आश्रम में आते थे और जीवन तत्व साधन के माध्यम से पूर्ण स्वस्थ होकर हँसते हुए अपने घरों को जाया करते थे। हमारे गुरुदेव भगवान जीवन तत्व साधन के माध्यम से अनेक रोगियों को मृत्यु के मुँह से निकालकर उन्हें जीवन प्रदान किया है। इस संबंध में अनेक उदाहरण पत्र, पत्रिका एवं पुस्तकों में विद्यमान हैं। ऐसा ही एक सच्चा उदाहरण आप के समक्ष प्रस्तुत है। इस उदाहरण को आप के हाथों तक पहुँचाने का केवल मात्र एक ही उद्देश्य है कि हम जीवन तत्व साधन के महत्व को जान सकें, समझ सकें और अपने जीवन का एक

अभिन्न अंग बना सकें।

प्रयाग राज के दक्षिण में यमुना नदी पार नैनी एक व्यवसायिक क्षेत्र है। यहीं पर अपने एक गुरु भाई श्री श्रीवास्तव जी रहा करते थे, उनका नाम स्मरण में नहीं आ रहा है क्योंकि प्रसंग बहुत पुराना है। भाईजी का एक लड़का था जो गठिया रोग से पीड़ित था। भाई जी ने बहुत उपचार कराया परन्तु रोग घटने के बजाय दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। लड़का चल फिर नहीं पाता था। उसकी रोजी–रोटी के लिए भाई जी ने एक किराने की दुकान खोल दी थी जिससे बैठे–बैठे वह कुछ कमाई कर सके। लड़का रोग के कारण अपने जीवन से निराश हो चुका था। इसी हालत में काफी समय बीत गया। हमारे वरिष्ठ गुरु भाई श्री विनय मालवीय जी पहले मालवीय नगर चौक प्रयागराज में महामना मदन मोहन मालवीय जी के ऐतिहासिक भवन में रहा करते थे। उस भवन में हमारे दादा गुरुदेव का एक बड़ा स्वरूप विराजमान रहता था जिस स्वरूप की आज भी माघ मेला शिविर में आरती पूजन किया जाता है। सन् 1998 के आस–पास का समय होगा। भाई श्रीवास्तव जी का वह लड़का पूछते–पूछते चौक स्थित श्री मदन मोहन मालवीय जी के उस भवन तक आया। तब तक श्री विनय मालवीय जी उस भवन को छोड़कर अपने नये आवास तेलियर गंज आ चुके थे। वह लड़का पूछते–पूछते श्री विनय मालवीय जी के नये आवास तक पहुँचा। श्री मालवीय जी के नये आवास में भी हमारे दादा गुरुदेव का वही बड़ा स्वरूप आज भी विद्यमान है। श्री मालवीय जी उस लड़के को नहीं पहचानते थे। उन्होंने उस लड़के से पूछा तुम कौन हो और किस काम से यहाँ आये हो? तब उस लड़के ने पूरी बात इस प्रकार बताई–

मैं अमुक श्रीवास्तव का लड़का हूँ जो आपके गुरु भाई थे। मैं नैनी में रहता हूँ। मैं गठिया रोग से पीड़ित था। रोग के कारण मैं अपने जीवन से निराश हो चुका था। एक रात मैं अपने बारे में बड़ी गम्भीरता से सोच रहा था कि हे प्रभो! मेरा क्या होगा? सोचते–सोचते कब मुझे नींद आ गई पता नहीं चला। रात्रि के अन्तिम प्रहर में मैं क्या देखता हूँ कि श्री प्रभु जी सामने खड़े हैं और कह रहे हैं बेटा, निराश न होओ। जो मैं कहता हूँ ध्यान से सुनो और करो। वे अपने सामने मुझे जीवन तत्व साधन की नौ क्रियाएँ कराकर सिखाया और उसके बाद अदृश्य हो गये। मैं अचानक चौंककर उठा और यह संकल्प लिया कि आज से मैं नित्यप्रति जीवन तत्व साधन यथाशक्ति करूँगा। जीवन तत्व साधन मैं धीरे–धीरे करने लगा और आज इस स्थिति में हूँ कि स्वयं चलकर नैनी से आप के यहाँ श्री प्रभु जी का दर्शन करने आया हूँ। कृपया मुझे दर्शन कराइये। दरबार में श्री प्रभु जी का दर्शन करके

वह लड़का आनन्द विभोर हो गया और उसकी आँखों से अश्रु–धारा बहने लगी। इस प्रकार जीवन तत्व साधन के माध्यम से उस लड़के को श्री प्रभु जी कृपा से एक नया जीवन मिला।

भाइयों और बहनों! जीवन तत्व साधन हमारे शरीर को स्वस्थता प्रदान करने के साथ–साथ धारणा, ध्यान, समाधि और मुक्ति के द्वार तक पहुँचाने में भी अत्यन्त सहायक होता है। आइए हम सब मिलकर यह संकल्प लें कि आज से हम जीवन–तत्व–साधन को अपनी दैनिक क्रिया का एक अभिन्न अंग बनायेंगे और नित्य प्रति समयानुसार श्री प्रभु जी का चिन्तन करते हुए श्रद्धापूर्वक जीवन–तत्व साधन को स्वयं करेंगे और अन्य लोगों को भी करने के लिए प्रेरित करके। इसका प्रचार–प्रसार करेंगे। प्रस्तुत प्रकरण में सिद्धान्त की बात यह रही कि किसी कार्य को यदि हम श्रद्धा–भक्ति पूर्वक श्री प्रभु जी का चिन्तन–मनन करते हुए करेंगे तो उनकी कृपा वर्षा अवश्य होगी और हर कार्य अवश्य फलीभूत होगा। इसमें कोई शंका की बात नहीं है। मैं अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा याचना करते हुए निम्न शब्दों के साथ मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ–

"करो प्रेम से भक्ति–सेवा गुरु की,
तो मिल जायेगा वो रतन धीरे–धीरे।।
सादर जयगुरुदेव।

।। निर्बल के बल राम।।

भक्ति कवि सूरदास

सुने री मैंने, निर्बल के बल राम।
पिछली साख भरूँ संतन की अड़े सँवारे काम।।
जब लगि गज अपनो बल बरत्यो नेकु सर्‌यो नहिं काम।
निर्बल ह्वै हुयै बलराम पुकार्‌यो आये आधे नाम।।
द्रुपद–सुता निर्बल भइ ता दिन गहलाये निज धाम।
दुःशासन को भुजा थकित भई, बसन रूप भये श्याम।।
अप–बल तप–बल और बाहु–बल चौथौ हैं बल दाम।
'सूर' किसोर कृपातें सब बल हरि को है हरिनाम।।

अन्तर्मुखता का साधन

मौन

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

अन्तर्विज्ञान के वेत्ता हमारे ऋषियों ने अपने अनुभव के आधार पर लिखे ये सद्ग्रन्थों में अपनी विविध प्रकार की साधनाओं का वर्णन किया है। सभी साधनाओं का लक्ष्य एक ही है कि साधक येन–केन–प्रकारेन अन्तर्जगत में प्रवेश करे और वहाँ के यात्म–दृश्यों को देखकर बाह्य–जगत के बन्ध तोड़ ले। कठोपनिषद को तृतीय बल्ली नचिकेता को उपदेश देते हुए यमराज ने स्पष्ट शब्दों में यह आदेश दिया–

राञ्चिखानि व्यतृणतृ स्वयंभूः,
तस्मात्पराङ् पश्यतिनान्तरात्मन्।
रश्चिद्धीरः प्रत्येगात्मानमैक्षत्,
आवृत्त चक्षुः अमृतत्वमिच्छन्।

अर्थात् परमात्मा ने हमारी इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है इसलिए वे बाह्य–जगत में ही प्रवृत्त रहती हैं। अन्तर्जगत् में प्रवेश नहीं करतीं। अन्तर्जगत् में प्रवेश करने की इच्छा वाला कोई बिरला ही, साधक इनको अन्तर्जगत् की ओर मोड़ करके ही उस प्रत्यक् आत्मा को देख पाता है। इसलिए अन्तर्जगत में प्रवेश की इच्छा करने वाले हमारे आचार्य अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुखता की ओर झुका करके ही शांति लाभ लेते हुए अमृत्व को पा सकें। अखिलात्मा भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में–

'मौनं चैवास्मि गुह्यानाम्'

कह करक मौन की महत्ता का संकेत किया है। गुह्य शब्द का यही अर्थ है, वे लोग जो अन्तर्निधि को प्राप्त कर चुके हैं। वही छुपे हुए है, गुह्य हैं, गुप्त है। उन लोगों की स्थिति समुद्रपान करके भी होंठ सूखे दिखलाने वाली है।

हमारे शास्त्रों में दो प्रकार के सिद्धों का वर्णन मिलता है। एक तो वे लोग हैं जो स्वतः सिद्ध हैं अर्थात् जो अनादिकाल से सिद्ध ही चले आते हैं। दूसरे वे है जिन्होंने साधना के बल पर सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। मौन भी अन्तर्मार्ग के साधकों की एक गुह्य साधना है जो उनके अन्तर्निधि की रक्षा करती है। हमारी अन्तर्जजगत की शक्ति इन्द्रियों की बहिर्मुखता

के द्वारा ही बाह्यजगत में प्रसारित होती है। इन्द्रियों का वेग इतना प्रबल होता है कि जिसके लिए अखिलात्मा भगवान् श्रीकृष्ण को अर्जुन को समझाते हुए यह शब्द कहने पड़े कि–

यततोऽपि कौन्तेय,
पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि,
हरन्ति प्रसमं मनः।।

अर्थात् हे अर्जुन! बड़े–बड़े बुद्धिमान व्यक्ति अपने मन को संभाले रखने का पूरा–पूरा प्रयत्न करते हैं किन्तु इन्द्रियों का वेग इतना प्रबल है कि उन बुद्धिमान विद्वानों को भी पीस डालना है।

तानि सर्वाणि संयम्य,
युक्तासीत्मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि,
तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

अर्थात् जो योगी उन सब पर नियंत्रण करके मेरी उपासना करता है और शनैः शनैः अभ्यास के बल से इन्द्रियों को वश में कर लेता है वह प्रतिष्ठित बुद्धि वाला बन जाया करता है।

अतः बुद्धि के प्रतिष्ठान के लिए और वर्षों के लम्बे अभ्यास के द्वारा प्राप्त अन्तर्जगत के ऐश्वर्य की रक्षा के लिए साधक को चाहिये कि वह अपनी जिह्वा पर नियंत्रण करे। मनुष्य के मन में यदि किसी के प्रति ईर्ष्या पैदा होती है तो वह अपने मन को उद्वेग को रोक नहीं पाता, प्रत्युत्तर कटु शब्दों का उच्चारण करके उसको अभिशाप दे डालता है, जिसका परिणाम यह निकलता है कि साधक की अपनी शक्ति का क्षय तो होता ही है प्रत्युत दूसरे को भी भारी दण्ड मिल जाता है जिससे वह अनेक प्रकार की यातनाओं को भागता है। जिसके फलस्वरूप श्राप के देने वाला स्वयं भी एक पाप को कमा लेता है और इससे उसकी अन्तर्साधना में भारी अन्तरायें उपस्थित हो जाती हैं। इस लिए साधक को चाहिये कि अपनी अन्तर्निधि की रक्षा के लिए मौन का अभ्यास करे एवं अपनी सहन शक्ति को बढ़ाये जिससे उसका अन्तर्विकास भी उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाये। उत्तम तो यही है कि योगी के मन में किसी भी प्रकार का विकार ही पैदा न हो ऐसा तभी हो सकता है जब साधक एकान्त स्थान में रह करके तप, स्वाध्याय एवं योगाभ्यास के द्वारा अन्तर्प्रकाश को

पैदा कर ले। जिससे हमें हर समय शान्ति आनन्द एवं प्रफुल्लता बनी रहे तभी उसके अन्दर मौन धारण करने की योग्यता भी आ सकती है, अन्यथा मौन भी मिथ्याचार का रूप धारण कर लेगा। श्रीमद्भगवद् गीता में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से ऐसे लोगों को मिथ्याचारी कहा है जो कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण करके मन में उनके विषयों का चिन्तन करते रहते है। यथा–

कर्मेन्द्रियाणि संयस्य,
य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान विमूढ़ात्मा,
मिथ्याचारः स उच्यते।।

इसलिए मनुष्य को मौन तो रहना चाहिये, किन्तु उसको अभ्यासशील होना भी बहुत आवश्यक है। अभ्यासशील साधु अपनी जिह्वा पर नियन्त्रण करके यदि मौन रहेगा तो उसका वह मौन भी उसकी अन्तर्मुखता का एक विशिष्ट साधन बन जायेगा, उसकी अन्तर्निधि भी बढ़ती चली जायेगी। एवं 'मौन चैवास्मि गुह्यानां' के अर्थ को वह भली प्रकार समझ जायेगा तब उसके मन में यह धारणा स्वाभाविक बन जावेगी–

सर्वे भवन्तु सुखिनः,
सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,
मां कश्चिद् दुःखभागभवेत्।।

❀❀❀❀❀❀❀

विचार–कण

जब तुम्हारे सामने कोई तुच्छ आसुरी प्रकृति का व्यवहार करे, तब उसकी नीचता को अपने निर्मल स्वभाव से ढक लो। ऐसा करने से तुम्हें ही सन्तोष होगा। बिना विचारे कभी न बोलो, क्योंकि इससे बड़ी–बड़ी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं, अविचारपूर्वक निष्क्रिय भी न रहो, क्योंकि इससे भी कहीं आलस्य, कहीं शक्ति का दुरुपयोग होता है। अपनी दृष्टि को सदा वश में रखो, तभी तुम कुभावों की चेष्टा से बच लोगे। जब कभी विपत्ति का सामना करना पड़े, तब विनीत भाव से धैर्यपूर्वक उसे सहन करो।

कर्मयोग की भूमिका में :

अहिंसा और समता भाव

—डॉ. श्री रमेशचन्द्र मिश्र

हिंसा वृत्ति का विरोध और अहिंसा भाव का पोषण भारतीय जीवन–दृष्टि में अत्यन्त प्राचीन काल से समर्थित और पुष्ट होता रहा है। इसीलिए अहिंसा' को परम धर्म, परम तप और परम सत्य तक कहा गया है। 'धर्म' के लक्षण के रूप में 'अहिंसा' को प्रथम स्थान मनीषियों ने सम्भवतः इसी लिए दिया है कि लोकाचरण में क्रूरवृत्ति अथवा दुष्टता का आचरण विधा तक माना गया है। इसीलिए अहिंसावृत्ति अपनी चेतना में 'परममित्र' रूप में मानी जाती है। अपनी आत्म–चेतना के समान ही दूसरे की आत्मा को मानना समताभाव का निष्कर्ष माना गया है। इसीलिए योग–चिन्तन में 'समत्वं योगमुच्यते' को विचार और व्यवहार की भूमका माना गया है। यहाँ पहले 'अहिंसा' शब्द के मूल और मर्म को समझते हुए अहिंसा भाव के सामाजिक दायित्व को समझना आवश्यक है अन्यथा इस आत्म पुरुषार्थ भाव को कमजोरी या पलायन का ढाल ही माना जाता रहेगा। देखना यह है कि क्या यह वृत्ति कमजोरों की रक्षा करती है अथवा शक्तिशाली पुरुषार्थी–आत्मवान लोगों के स्वास्थ्य का संवर्द्धन करती है।

'हिंसा' शब्द 'हिंस' धातु टाप् प्रत्यय से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है हत्या, हानि, क्लेश–ताप पहुँचना आदि। हिंसा वृत्ति के प्रतिरोधक भाव के रूप में अहिंसा भाव को प्रतिष्ठित किया गया है। धर्माचरण (= मानव सदाचरण परिपालन) में स्व–भाव की प्रतिहन्ता अथवा प्रतिरोधक वृत्तियों–काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, मत्सर आदि को दमित–शमित करने के लिए उनसे प्रबलतम एवं पोषक भावों की प्रतिष्ठा धर्मांगों के रूप में हुई है, तभी तो 'अहिंसा' को नकारात्म भाव न मानकर स्वभाव सम्बन्धी मूल भाव के अन्तर्गत मानते हुए धर्म परिपालक प्रमुख लक्षणों में स्थान मिला। भारतीय धर्मशास्त्रों में 'अहिंसा' के प्रतिरोधी अथवा विलोमी शब्द 'अहिंसा' का इतना प्रचार और प्रतिष्ठा मिली कि व्यक्ति के दैनिक नियमाचरणों में एक आवश्यक अंग के रूप में 'अहिंसा' वृत्ति की भाव–चेतना को समाहित कर लिया गया। सात्विक साधनात्मक मार्ग पर अग्रसर होने के लिए यम–नियमादि योग–अनुशासन की प्रथम सीढ़ी के रूप

में भूमिका बनाई गई है। 'यम' (=संयम) के अनुशासन के बिना इस मार्ग पर एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाया जा सकता और उस एक कदम में साधक को पहला स्वभाव अहिंसामूलक बनाने का निर्देश है, क्योंकि अहिंसा भाव की प्रतिष्ठा के बिना बैर भाव का उन्मूलन संभव नहीं है और बैर-वृत्ति के रहते कोई धर्माचरण सफल नहीं हो सकता। इसीलिए योग पुरुष पतंजलि महाराज ने 'अहिंसा' को यम-नियमादि के प्रथम अंग के रूप में स्वीकृति दी है।

अहिंसा भाव नपुंसक भाव नहीं है। यह हिंस्त्र मन पर लगाम लगाकर उसकी शक्तियों को संचित सम्वर्द्धित और सही दिशा में संचालित करता है। चेतना के विकास की दृष्टि से यह शब्द पशुता पर मनुष्यता की विजय के रूप में जीवन-व्यवहार में प्रचलित हुआ है। अहिंसा भाव के विकास के रूप में जंगल-राज पर मानवीय विवेक-संयम अनुशासन और समता भाव के रूप में स्वीकृति मिली है। इसीलिए अहिंसा भाव का पूरा परिवेश मानवीय धर्म-चेतना की असीम सम्भावनाओं का अपने में समाहित किये हुए है। यही कारण है कि सभी धर्म-समुदायों ने अहिंसा के साथ दया, सभी प्राणियों में आत्मभाव, पर दुःख कातरता और समता भाव का अपने-अपने शास्त्रों में समादरपूर्वक स्थान दिया है। अहिंसा-दया भाव से युक्त मनुष्य की चेतना से भय और बैर भाव से शनैः-शैनः मुक्ति मिल जाती है। इसके विपरीत 'हिंसा' करने वाले अथवा हिंसक-वृत्ति को धारण किये हुए क्रूर कर्मियों को अधःपतन की पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ बताते हुए कहा गया है कि जो मनुष्य दूसरों के प्राण हरने के लिए हाथ में डण्डा लेकर सदा भयंकर रूप धारण किये रहता है, जो प्रतिदिन हथियार उठाकर प्राणियों की हत्या में निरत रहता है, जिसके भीतर किसी के प्रति दया नहीं होती, जो सभी प्राणियों को उद्वेग में डाले रहता है, जो क्रूर होने के कारण चींटी आदि पर भी दया नहीं करता, ऐसे मनुष्यों का घोर नरक में पड़ना निश्चित है। जो नीच मनुष्य धन के लोभ में अथवा शत्रुता के कारण हथियार लेकर निहत्थे पुरुष को मार डालता है वह गधे जैसी नीच योनियों में जन्म लेता है। जिस मनुष्य का आचरण क्रूरता से भरा हुआ है, जिससे समस्त जीवों को भय प्राप्त होता है, जो हाथ-पैर, रस्सी, डण्डे, ढेले से तथा खम्भों में बाँधकर घातक शस्त्रों का प्रहार कर प्राणियों को सताता है। छल-कपट करते हुए हिंसा-वृत्ति से प्राणियों में उद्वेग पैदा करता है अथवा आक्रमण करता है, ऐसे मनुष्य को नरक में गिरना आवश्यक है।

महाभारत कालीन हिंसा वर्जन एवं अहिंसा भाव पोषण सम्बन्धी उक्त नैतिक कथन

के बाद के वैष्णव समुदायों, जैनागमों में तो अहिंसा का महत्त्व इतना अधिक प्रतिपादित हुआ है कि उन्होंने महाभारतकालीन **''अहिंसा परमोधर्मस्तथा अहिंसा परं तपः''** वाले दृष्टिकोण में **''अहिंसा परमोधर्मः''** को अपनी चर्या में प्रथम महत्त्वपूर्ण चर्या–ध्येय के साथ ही प्रस्तुत किया है। कथानकों में मिलता है कि चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर ने आषाढ़ी पूर्णिमा के पचासवें दिन अर्थात् भाद्रपद शुक्ल पंचमी को 'पर्युषण व्रत' किया था। पर्युषण शब्द का अर्थ है ''समीप निवास।'' यह शब्द वस् धातु से निष्पन्न हुआ है और 'उपनिषद्' शब्द के आशय के समीपवर्ती है। आज भी जैन मतालम्बी इसी दिन पर्युषण पर्व के रूप में अहिंसा–दिवस मनाते और हिंसा त्याग का संकल्प लेते हैं।

हिंसा और अहिंसा सम्बन्धी सन्तों के भाव विचारों को जानने से पहले एक–दो जिज्ञासा और शब्द प्रयोगों में झंकृत कुछ आशंकाओं पर विचार कर लेना अपेक्षित है। क्या हिंसा और हत्या पर्यायवाची शब्द हैं? क्या युद्ध में मारना और सामान्य जीवन में क्रूरता से वध करना एक ही मानसिकता के फलित पक्ष हैं? क्या अपराधी को दण्ड देना या हत्यारे को दण्डित करना पाप–कर्म है? क्या हिंसक व्यक्ति समाज समतावादी हो सकता है? आदि आदि। जहाँ तक इन पंक्तियों के लेखक का चिन्तन–पक्ष है और जितने शास्त्र–प्रमाण तथा आज का हिंसा–अहिंसा सम्बन्धी विचार–पक्ष मिलता है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि हत्या, युद्ध, युद्ध–हत्या और हिंसा–वृत्ति में स्थूल और सूक्ष्म का अन्तर है। सभी एक जैसी मानसिकता के परिणाम नहीं हैं। ''हिंसा और हत्या'' में मानसिकता और उसके परिणाम का स्पष्ट अन्तर देखा जा सकता है। हत्या में जहाँ जीवन का हरण निश्चित है, वहीं हिंसा एक क्लेश वृत्ति है, जो मन, वाणी और कर्म इन तीनों ही माध्यमों से सम्भव है। हाँ, हिंसा का क्रूरतम या कठोरतम परिणाम हत्या या हत्याएँ हो सकती हैं। हिंसा वृत्ति का क्रूर दबाव पहले अन्तर्मन पर पड़ता है, जो हमारे भाव–विचारों और अध्यवसायों को प्रभावित और प्रेरित करता है। हत्या से पहले हिंसा का निमर्म घटनाक्रम मनुष्य की चेतना में चलता है, जिसका परिणाम घटना विशेष में देखने को मिलता है। पहले हम मन में ही हिंसा या हत्या करते हैं, सृष्टि या विनाश करते हैं। बाहर तो उसकी भौतिक निष्पत्तियाँ ही होती हैं जो स्थूल रूप में दिखाई देती हैं। आज अपराधों की मूल वृत्ति को जानने अथवा अपराधी की मानसिकता को समझने के लिए स्थूल घटनाओं के पीछे भी सूक्ष्म मानसिकता समझने की बड़ी आवश्यकता हो गई है। क्योंकि अपराध वृत्ति से छुटकारा

पाने या दिलाने के लिए अपराधी की वृत्ति या मानसिकता में परिवर्तन या रूपान्तरण आवश्यक है, जो पूर्व मानसिकता में विचार क्रान्ति के द्वारा ही सम्भव है। विचारों की ऐसी क्रांति ही कठोर वृत्तियों का परित्याग कराके सूक्ष्म एवं कोमल वृत्तियों का संचार करा सकती है। ऐसी वृत्तियों के माध्यम से ही सब प्राणियों के अस्तित्व का महत्त्व हमारी चेतना में उदित होता है, जिससे बाहरी परिवेश में भी बदलाव सम्भव है–

प्रभु के बनाये जेते जीव हैं जहाँ के तहाँ,
खेलत फिरत तिन्हें खेलन फिरन देहु।

अहिंसा को परमधर्म मानने वाला व्यक्ति यदि युद्ध–सैनिक है, तब उसका क्या दायित्व होता है? क्या वह अपने प्रतिपक्षी को शत्रु माने या न माने? इस सम्बन्ध में महाभारत के रचनाकार व्यास का विचार–साध्य है कि अहिंसा परमधर्म है, ऐसी जिनकी मान्यता है और जो "यथाऽऽत्मनि तथा परे" में विश्वास रखते हैं, वे भी यदि राजा के सेवक हैं अर्थात् उनसे भरण–पोषण की सुविधा एवं भोजन पाते हैं तो ऐसी दशा में अपनी शक्ति के अनुरूप संग्राम में जूझना उनके लिए आवश्यक है। यहाँ भृत्यवृत्ति और अहिंसा भाव धारण में विरोध नहीं बताया गया। इसी प्रकार अपराधी को दण्ड देने–दिलाने में परम वैष्णव सन्त कबीर भी संकोच करते दिखाई नहीं देते। वे कहते हैं कि उसके मारने में कोई खेद नहीं होना चाहिए, जिसके मरने से लोगों को सुख मिलता हो। ऐसे दण्ड–फल को कोई बुरा नहीं मानता। अपराध के विरोध में ऐसा पक्ष समर्थन हिंसावृद्धि का पोषण न होकर बहुजन हित में अहिंसा भाव का ही संवर्द्धन कहा जायेगा। अतः हिंसावृत्ति पर अहिंसा भाव का दबाव अथवा विजय व्यक्ति की अन्तर्यात्रा का क्रान्तिकारी मोड़ या चेतना का सही दिशा में रूपान्तरण है। इस प्रकार के रूपान्तरण के पश्चात् व्यक्ति की मानसिकता में वैसा ही परिवर्तन होता है, जैसे ऋतु परिवर्तन में बसन्त के आगमन पर वृक्षों वनस्पतियों को पुराना कलेवर बदल कर नया स्वरूप मिल जाता है। ऐसे ही अहिंसा भाव की विजय के पश्चात् आत्म–स्वभाव में क्रान्तिकारी परिवर्तन होता है। ऐसा करते हुए मनुष्य अपने स्वरूप–स्वभाव के और अधिक निकट आता है। उसके बाद जब वह उसी स्वभाव में जीने लगता है, तभी 'वसुधा' उसका परिवार बन जाती है। स्वभाव–परिवर्तन की ऐसी घटना, बाह्य जीवन की घटनाओं से कम महत्त्व की नहीं होती, अपितु अधिक विश्वसनीय अधिक महत्त्व की होती है। मानसिकता के वैसे परिवर्तन में मनुष्य–मनुष्य के प्रति होने वाले भेद–भाव का प्रायः तिरोभाव हो जाता है। यहाँ तक कि चेतना प्राणी मात्र में आत्म–सम्बन्ध जोड़ने

लगती है। हिंसा वृत्ति जैसे ही अहिंसा भाव से स्थानापन्न होती या होने लगती है वैसे ही समता भाव या समदृष्टि का विकास होना स्वाभाविक है। ऐसे रूपान्तरण में संयम का बहुत बड़ा हाथ रहता है अर्थात् अहिंसा भाव भी प्रतिष्ठा में संयम, समता भाव, क्रिया-पक्ष के रूप में सामने आता है। पुनः आशंका हो उठती है कि क्या अहिंसा भाव कोई पक्ष विशेष है जो स्थिति विशेष में ही कार्यशील होता है अथवा हिंसा के विरोध या विलोम के रूप में जाना जा सकता है? वास्तव में हिंसा तो पूर्व पक्ष है ही, जो व्यक्ति की अखंड चेतना को विभाजित करके प्रस्तुत करता है, क्योंकि हिंसावृत्ति के बलवती होने पर ही व्यक्ति की चेतना 'स्व और पर' में विभक्त हो जाती है। फलतः हमारा स्वराज्य खंडित होकर अथवा खण्ड-खण्ड में आबद्ध होकर अनेकानेक सम्बन्धों में बँधकर सामने आता है तब विभेदकता और विषमता का होना स्वाभाविक हो जाता है, क्योंकि उन सम्बन्धों के कारण ही अहंकार वृत्ति एवं स्वार्थपरता का होना तथा मोहासक्त के कारण संकीर्ण बने रहना स्वाभाविक जान पड़ता है। तब अहिंसा भाव का विस्तार एवं समताभाव की व्याप्ति सम्भव नहीं है। तभी तो विचारक-साधक जाने-अनजाने योग-भूमिका की शरण में जाकर जिस महाराज का जीवन चुनता है, उसमें कहीं कोई बैरभाव को स्थान नहीं रहता। तात्पर्य यह है कि हिंसा वृत्ति पर अनुशासन किये बिना संयमी-साधना परायण जीवन सम्भव नहीं है। कारण यह है कि जब चेतना विखण्डित या विभाजित रहती है अथवा हिंसावृत्ति के आधिपत्य के रहते जीवन में सात्विकता की सत्ता बनाये रखना सम्भव नहीं है।

सात्विक भाव की स्थिति 'स्व' में स्थित रहने पर ही सम्भव होती है। 'स्वयं' से दूर रहते हुए स्व-प्राण अथवा अखण्ड चेतना से जुड़ पाना कठिन है। वैसी मानसिकता में हम प्राणीमात्र से, अलगाव का सम्बन्ध रखेंगे जो स्थितियों के परिणामों से अर्थात् सुख-दुःख, लाभ-हानि, आशा-निराशादि से जुड़ा रहता है। पर जितने हम अपने से, स्व से जुड़े रहते हैं, स्वराज्य में जीते हैं, उतने ही हम प्राणीमात्र के निकट होते हैं। यह जीना उच्छृङ्खल जीना नहीं है, अपितु 'स्व' अर्थात् आन्तरिक अनुशासन में जीना है।

सूक्ष्म शरीर की बात

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा एम. ए. एम–एड.

बहुधा व्यक्ति स्थूल शरीर से ही परिचित है। स्थूल शरीर का परिचय भी अधूरा है। हमारे स्थूल शरीर के बाहर अनेकों स्थूल पदार्थ हैं उनसे शरीर का स्थूल सम्बन्ध होता रहता है। रेल, मोटर, हवाई जहाज में बैठकर हम यात्रा करते हैं, कुर्सी मेज पलंग आदि को शरीर के काम लाते हैं। यह शरीर रेल, हवाई जहाज, कुर्सी मेज तथा पलंग की अपेक्षा सूक्ष्म है। इस स्थूल शरीर के भीतर कई और शरीर लिये हम घूम रहे हैं। योगियों ने इन शरीरों को आत्मा का क्षेत्र कहा है–

इदं शरीरं कौन्तेयक्षेत्रमिति अभिधीयते।

–गीता 13/1

इस क्षेत्र के अन्दर बाहर क्षेत्रज्ञ पुरुष व्याप्त है जिस प्रकार आकाश घर और घर के बाहर व्याप्त होता है। स्थूल शरीर के अन्दर सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म शरीर के अन्दर कारण शरीर तथा कारण शरीर के अन्दर महाकारण या तुरीय शरीर है। 'शीर्यते इति शरीरम्।' जिसमें वृद्धि और क्षय आदि–परिणाम तथा रूपान्तरण सतत् होता रहे, उसे शरीर कहते हैं। शरीर ही भोगायतन होता है। हम शुभ–अशुभ जो भी कर्म करते हैं उनसे सुख और दुःखरूपी फल मिलता है। प्रारब्ध का भोग शरीर के द्वारा होता है। आधि–व्याधियाँ शरीर में ही प्रकट होकर सुख और दुःख दिया जा करती है। कर्मों के संस्कार शरीर रूपी खेत में ही फलते–फूलते हैं। सन्त तुलसी कहते हैं–

तुलसी काया खेत है, मनसा भयो किसान।
पाप–पुण्य दोऊ बीज हैं, बुवे सो लुनै निदान।।

कर्मों की खेती शरीर रूपी खेत में होती है। जब तक हम स्थूल शरीर में रहते हैं, सभी कर्मों का भोग स्थूल रूप में बहुत काल तक भोगना पड़ता है। स्थूल शरीर के भीतर उतरकर सूक्ष्म शरीर के धरातल पर रहने की क्षमता आ जाने पर कर्म–प्रवाह जन्य भोग सूक्ष्म शरीर से सूक्ष्म रूप में भोग लिया जाता है। सूक्ष्म से भी परे कारण शरीर है। कारण शरीर में पहुँचने पर बुद्धियोग की प्राप्ति हो जाती है। कारण से भी परे महाकारण शरीर है जो व्याप्त चेतन सत्ता के साथ एक रस रहता है।

स्थूल शरीर अन्नमयकोश से निर्मित है। मनोमयकोश से सूक्ष्म शरीर प्राणमयकोश से कारण शरीर तथा विज्ञानमयकोश से महाकारण शरीर है। ये सभी शरीर देखे जा सकते हैं। जिस प्रकार स्थूल शरीर से शक्ति के बड़े-बड़े कार्य किये जा सकते हैं उससे भी बड़े-बड़े कार्य सूक्ष्म शरीर द्वारा किये जा सकते हैं। जब हम सो जाते हैं तो स्वप्न में विचित्र-विचित्र अनुभव होते हैं। हमारा शरीर चारपाई पर पड़ा रहता है किन्तु हम दूसरे स्थान पर पहुँचकर दूसरे शरीर से उड़ते हैं, भागते-दौड़ते हैं तथा नाना प्रकार के कार्य करते हैं। ध्यान परायण योगी अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर सूक्ष्म शरीर के माध्यम से चित्त-निर्माण करते हैं तथा दूसरे व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित होकर उसे सहायता दिया करते हैं। सिद्ध लोग सूक्ष्म शरीर से आकाश मार्ग में घूमा करते हैं तथा दिव्य लोकों में गमन करते हैं।

महात्मा ईसा फांसी पर लटकाये जाने के बाद सूक्ष्म शरीर से शिष्यों के समक्ष उपस्थित होकर उन्हें उपदेश देने लगे थे। तीसरे दिन वे सूक्ष्म शरीर के द्वारा कब्र से बाहर आये। सूक्ष्म शरीर दीवारों के बीच में से गुजर सकता है। सूक्ष्म शरीर एक दम प्रकट होकर गायब हो सकता है। सूक्ष्म शरीर तेजोमय होता है। मरने के बाद स्थूल शरीर पड़ा रहता है। उसमें से सूक्ष्म शरीर निकल जाता है और किसी स्थूल अधिष्ठान की तलाश में कुछ दिन इधर-उधर भटकता है। यदि स्थूल शरीर के द्वारा अपना मार्ग ठीक कर लिया है। योग-विधि से प्राण-त्याग किये हैं तो प्राण-त्याग के बाद आगे के कर्मों के भोग के लिए पुनः नया स्थूल शरीर मिल जाता है। जिनकी मृत्यु किसी संवेग के कारण या दुर्घटना से होती है अथवा आत्म-हत्या करते हैं वे भूत-प्रेत के रूप में उस समय तक घूमते रहते हैं जब तक कोई इष्ट जन उनको पिण्डदान तथा श्राद्ध तर्पण आदि से तृप्त कर उनको मार्ग तैयार नहीं करता। सूक्ष्म शरीर में ज्ञान के अभाव में कुछ करने की सामर्थ्य नहीं होती। क्रिया करने के लिए उसे स्थूल शरीर का आश्रय लेना पड़ता है। कर्म करने के लिए स्थूल शरीर की कर्मेन्द्रियों की आवश्यकता है। प्राचीन यूनान के धार्मिक संस्कारों में ऐसी विधियों का उल्लेख है जिनके द्वारा सूक्ष्म शरीर को भौतिक शरीर से बाहर निकाल कर, उससे अनेकों कार्य करवाये जा सकते हैं। मनोविश्लेषण शास्त्र के जक सिगमण्ड फाइड के शिष्य कार्लजुंग ने Memories, Dreams, Reflections नामक अपनी पुस्तक में 1944 सन् के अपने अनुभव का उल्लेख किया है। एक बार उन्हें दिल का दौरा पड़ा। उस अवस्था में उन्हें अनुभव हुआ कि वे अन्तरिक्ष में लटके हुए जेरुसलम नगर को देख रहे हैं। फिर अनुभव हुआ कि उनका सूक्ष्म शरीर जगमगाते एक

पूजा-गृह में प्रवेश कर गया जहाँ पूर्वजन्मों के अपने सभी शरीरों से भेंट हुई। तभी डॉक्टर के सूक्ष्म शरीर की काली छाया मंडराती हुई वहाँ आ पहुँची और उन्हें आदेश दिया कि अपने भौतिक स्थूल शरीर में लौट जाओ। उनके आदेश का पालन करते ही जुंग को लगा कि उनकी स्वतन्त्रता छिन गई और वे पुनः अपने स्थूल शरीर में कैद हो गये तथा उनकी शक्ति भी सीमित हो गई। इस अनुभव ने जुंग को पुनर्जन्म तथा अर्जित पूर्वजन्म के संस्कारों की उपयोगिता के सिद्धान्तों पर विश्वास करने को विवश कर दिया था।

साक्षीभाव या दृष्टाभाव की साधना में योगीजन अपने सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से बाहर निकाल कर स्थूल शरीर को देखते रहते हैं। जैसे तकिये के खोल को तकिये से अलग कर धोते हैं, सुखाते हैं और फिर तकिये पर चढ़ा लेते हैं वैसे ही योगी सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से अलग कर स्थूल शरीर के संस्कार भागों को तटस्थवृत्ति से देखते रहते हैं जिससे उन्हें शरीर-जन्य सुख-दुःख नहीं होता। इस अभ्यास से अपने शरीर की गंभीर व्याधियाँ स्वयं ठीक की जा सकती हैं। सूक्ष्म शरीर में ऑपरेशन भी किया जा सकता है। उस ऑपरेशन का प्रभाव स्थूल शरीर पर तुरन्त होगा और पीड़ा भी नहीं होगी। स्थूल शरीर के धरातल से सूक्ष्म शरीर के धरातल पर रोग लेकर उन्हें दृष्टाभाव से देखकर शीघ्र ही रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है। आदतों, रूपरंग तथा स्वभाव का परिवर्तन सूक्ष्म शरीर की साधना द्वारा किया जा सकता है। मन्त्रजप से सूक्ष्म शरीर में स्पन्दन होता है और तेजस परमाणु सक्रिय होने लगते हैं। उससे सूक्ष्म शरीर के साथ सीधा सम्पर्क हो जाता है। धारणा और ध्यान में तन्मात्राओं के साथ सम्पर्क होने पर सूक्ष्म-जगत में प्रवेश करने की योगयता प्राप्त हो जाती है जिससे सूक्ष्म शरीर का विज्ञान समझा जा सकता है।

हमारा मन जब तक पदार्थ चेतना के साथ जुड़ा रहता है तब तक स्थूल बन्धन में होता है। पदार्थ चेतना से मुक्त होकर सूक्ष्म चेतना के साथ जिसे प्राणिक चेतना कहते हैं-मन संयुक्त होता है तब उसका स्थूल-बन्धन शिथिल हो जाता है। मन अवचेतन तथा अचेतन के साथ संयुक्त होकर चेतना से परिपूर्ण हो जाता है। चेतना का जितना अधिक विस्तार होता है, हम उतने ही अधिक शक्तिशाली होते हैं। चेतना की व्याप्त दशा का अनुभव ध्यान में होता है। या यों कहना चाहिए कि ध्यान द्वारा हम देश काल का अतिक्रमण कर अनन्त चेतना के साथ जुड़ जाते हैं। प्राणिक चेतना जगत में सभी पदार्थों

में अधिक साम्यता तथा निकटता है। स्थूल चेतना में हम छोटे-छोटे दायरों में बँटे हुए हैं। योग-निद्रा, अन्तःमौन, शिथिलीकरण तथा प्राणायाम द्वारा हमारे स्थूल-बन्धन ढीले होते हैं। फिर हम अपने सूक्ष्म प्राणमय चैतन्य के साथ एकाग्रता रूपी ध्यान की क्रिया से जुड़ते हैं। आसनों के अभ्यास द्वारा भी मानसिक संवेगों, मनोवृत्तियों तथा चेतना के स्तरों में परिवर्तन आता है उससे स्वप्न, भय तथा स्नायविक रोगों में लाभ होता है किन्तु आसनों का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर की धारणाओं के साथ जुड़ता है तो फल शीघ्र दिखाई पड़ने लगता है। अतः आसन में धारणा का बड़ा महत्त्व है। आसनों का प्रभाव चक्रों पर भी पड़ता है। चक्रों की स्थिति सूक्ष्म शरीर में ही है। स्थूल शरीर की चीड़-फाड़ करने पर किसी शरीर शास्त्री को आज तक ये चक्र नहीं मिले इसलिए शरीर-रचना-शास्त्री चक्रों को कपोल-कल्पना समझते हैं।

सूक्ष्म शरीर में ही इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, चित्रावज्रा आदि नाड़ियाँ हैं तथा ब्रह्म, विष्णु तथा रौद्र ग्रन्थियाँ भी सूक्ष्म शरीर में हैं तथा सहस्त्रार के नीचे अमृत-कला तथा निर्वाण-कला (मृत्यु नाड़ी) नाम की नाड़ियाँ भी सूक्ष्म शरीर में हैं जिनसे योगी अमरता की साधना करने में सफल होता है। सूक्ष्म शरीर में ही कुण्डलिनी, भुजंगाकार होकर बैठी है। बौद्धिक चेतना के माध्यम से कुण्डलिनी के रूप में आनन्दमय कोश में ऊर्जा का विस्फोट होता है। यह ऊर्जा का स्फोट स्थूल शरीर में असाधारण शक्तियों का जनक होता है। भौतिक शास्त्र (Physics) में कहा गया है कि देश और काल की मान्यता एक आयाम (Dimension) के बाद दूसरे आयाम पर बदल जाती है। मनुष्य का सौ वर्ष ब्रह्माजी के कुछ सेकिण्ड के बराबर है। एक आयाम से निकल कर दूसरे आयाम में पहुँच कर देश और काल तथा उनमें प्राप्त होने वाले कर्मभोग सूक्ष्म होते जाते हैं। उदाहरण के लिए प्रारब्ध कर्म का कोई भोग बीस वर्ष के लिए उपस्थित हुआ है। यदि स्थूल शरीर से भोगना है तो बीस वर्ष में वह कर्म भोग पूरा होगा। वही कर्म-भोग मान लीजिये घातक बीमारी कैंसर के रूप में आया है। यदि उसे सूक्ष्म के आयाम पर पहुँचकर भोगा जाये तो बीस वर्ष का समय महीनों का समय हो जायेगा और कुछ काल में उस भोग से छुटकारा हो जायेगा। यदि उस सूक्ष्म से भी सूक्ष्म कारण शरीर के आयाम में पहुँचकर कर्मयोग को भोगा जाये तो वह स्थूल भोग भी बीजभाव में बदल जायेगा तथा उस भोग का दीर्घकाल सूक्ष्म काल में बदल जायेगा। वर्षों का भोगकाल कुछ घण्टों या सैकिण्डों में भोग लिया जायेगा। ध्यान योग का विज्ञान योगी को सूक्ष्म आयामों में पहुँचकर कार्य करने की कला

सिखाता है। समाधि–निष्ठ व्यक्ति जन्म–जन्मान्तरों के संस्कारों को इसी जन्म में भोग कर मुक्त हो सकता है। क्योंकि आयाम बदलने से वस्तु का स्वरूप परिवर्तन तथा पदार्थ का शक्ति के रूप में रूपान्तरण करने का विज्ञान योगी जान लेता है। समाधि की अवस्था में देश और काल दोनों नष्ट हो जाते हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान नष्ट हो जाते हैं, निकट, दूर सब नष्ट हो जाते हैं मन, बुद्धि चित्त, अहंकार सब कुछ नष्ट हो जाते हैं। योगी का एक तत्त्व के साथ अभिन्न सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। यही माया का हटना है। वेदान्त में देश–काल को कल्पित माना गया है। सब माया है। समाधि अवस्था में सूक्ष्मतम आयाम में पहुँचकर योगी सभी को अपने में लीन देखता है–

यो मां पश्यति सर्वत्र,

सर्वं च मयि पश्यति।

–गीता

अपने को सब पदार्थों में और सब पदार्थों में अपने को युक्त देखने वाला योगी जीवन–मुक्त कहलाता है। उसे कुछ करना–धरना शेष नहीं रहता। वह बूँद से समुद्र ही बन जाता है।

प्रभा मण्डल–सूक्ष्म शरीर का ज्ञान प्रभामण्डल से होता है। प्रत्येक पदार्थ के चारों ओर एक अदृश्य सूक्ष्म प्रभा मण्डल (Aura) होता है। यह ज्योति–मण्डल उस व्यक्ति तथा पदार्थ की प्राणशक्ति का द्योतक है। जैन–दर्शन में इस प्रभा–मण्डल को–लेश्यायें कहा गया है। काली, लाल, नीली, पीली, सुनहरी तथा श्वेत लेश्यायें व्यक्तियों में पाई जाती हैं। तामसी गुणों वाले व्यक्ति के चारों ओर गहरी काली लेश्यायें पायी जाती हैं। रजोगुणी क्रूर व्यक्ति के चारों ओर लाल तथा नीली लेश्यायें होती हैं। शुद्ध सात्त्विक व्यक्ति के चारों ओर स्वर्णिम तथा श्वेत–प्रभा–मण्डल पाया जाता है। इन प्रभा–मण्डलों के द्वारा रोग की सूचना भी मिल जाती है तथा प्रभा–मण्डल का विज्ञान जानकर प्रतिकूल लेश्यायें (मन्त्रजप, ध्यान आदि उपायों से) उत्पन्न कर रोगों को ठीक किया जा सकता है। सन्तों में प्राणशक्ति सूक्ष्म तथा व्याप्त होती है अतः उनके तेजो–मण्डल स्वर्णिम एवं श्वेत होता है और दूसरों को प्रभावित करने वाला होता है। प्रभा–मण्डल के विस्तार के आधार पर जाना जा सकता है कि कौन संत कितने अधिकार वाला है। एक बार महा प्रभुजी हरिद्वार कुम्भ में पधारे थे। उनके साथ उनके कई योगी बालक भी थे। उनके एक लाड़ले बच्चे जो तुरीय स्थिति में रहा करते थे। उनका नाम योगिराज श्री मुलखराज जी महाराज था जिन्हें

लाड़ में आनन्दकन्द श्री प्रभुजी 'राजे' कहा करते थे। एक दिन उन्होंने श्री प्रभुजी से पूछा–प्रभो! इस कुम्भ में कौन–कौन सिद्ध पुरुष आये हुए हैं? कृपया उनका दर्शन करा दीजिये। श्री प्रभुजी बोले–राजे! ध्यान में बैठकर देख ले। जिससे तेजोमण्डल जितने विस्तार वाला होगा वह उतना ही शक्ति सम्पन्न होगा। श्री प्रभुजी की बताई विधि से श्री मुलखराज जी महाराज ध्यान में बैठ गये और आज्ञा–चक्र पर संयम कर सिद्धों के दर्शन करने लगे। कुछ सिद्धों का तेज मेले भर क्षेत्र में फैला था कुछ का तेज हरिद्वार भर में व्याप्त था और कुछ का अधिक व्याप्त था। सिद्धों के दर्शन करते–करते श्री मुलखराज जी महाराज की इच्छा हुई कि अपने गुरुदेव श्री प्रभुजी का प्रभा–मण्डल का भी पता लगाया जाये। उन्होंने श्री प्रभुजी का तेज देखना प्रारम्भ किया। उनका तेज दिग्–दिगन्त तक फैला हुआ था। कहीं ओर छोर ही नहीं नजर आ रहा था। फिर तेज की एक किरण को पकड़–कर उसके सहारे चलते गये। चलते–चलते थक गये कहीं उस तेज का अन्त ही नहीं मिला। तभी श्री प्रभुजी ने उन्हें ध्यान से उठा दिया और हँसते हुए बोले–'क्यों रे राजे! हमसे उपाय सीखकर तू हमारी ही परीक्षा लेने लगा।'

वैज्ञानिकों ने प्रभा–मण्डल का चित्र लेने वाले संवेदनशील कैमरे का आविष्कार कर लिया है। उससे स्थूल के परे कोई सूक्ष्म चेतन शक्ति भी है, इस तथ्य को लोग स्वीकार करने लगे हैं। सोवियत रूस में एक दशक पूर्व एक इलेक्ट्रॉनिक विशेषज्ञ सेयथोन किर्लियान ने अपनी वैज्ञानिक पत्नी वेलेंटिना के सहयोग से किर्लियन फोटोग्राफी की एक विशेष विधि का आविष्कार किया जिसके द्वारा मनुष्यों, अन्य प्राणियों तथा पौधे के अन्दर तथा उनके इर्द–गिर्द होने वाले सूक्ष्म विद्युतीय कार्यों का चित्रण किया जा सकता है। पत्ते को तोड़कर उसके चित्र लिये गये तो विचित्र दृश्य देखने को मिले। तोड़े हुए पत्ते से प्रभा मण्डल निकल रहा था। पत्ता सूख गया तो फिर उसका चित्र लिया गया। सूखे पत्ते का प्रभा–मण्डल नष्ट था। प्रारम्भ में प्रभा–मण्डल ज्योतिर्मय थे पत्ते की मौत होने पर प्रभा–मण्डल भी नष्ट हो गये। इसी प्रकार मृत्यु के समय व्यक्तियों के चित्र लिये गये। मृत्यु के समय व्यक्ति के स्थूल शरीर से एक ज्योतिर्मय छाया निकल कर बाहर दिखाई पड़ी। किर्लियन दम्पत्ति ने रोगी व्यक्ति के छाया चित्र खींचकर देखा कि व्यक्ति के हृदय, उदर तथा मस्तिष्क पर विभिन्न रंगों के सूक्ष्म धब्बे थे जो इन अवयवों से विसर्जित होने वाली विद्युत ऊर्जाओं की जानकारी देते थे तथा उसके प्रभाव को सूचित करते थे। सूक्ष्म शरीर के इलेक्ट्रॉन ठोस शरीर के इलेक्ट्रॉन की अपेक्षा अधिक तेज रफ्तार से चलायमान होते

है। जिससे वे स्थूल शरीर से अलग होकर कहीं भी विचरण कर सकते हैं। डॉ. जे. सी. ट्रस्ट ने भी संवेदनशील कैमरे के द्वारा आभा-मण्डल के फोटो लेने की टेकनीक खोज निकाली है। उसने मृत व्यक्ति के फोटो में कुछ चमकीले और कुछ धुंधले द्रव्य देखे। जब प्राणी मरता है-उसमें से आत्मा, कर्म भावनामय लिंग शरीर तथा तेजस सूक्ष्म शरीर बाहर निकलते हैं। आत्मा के साथ जब तक इन शरीरों का सम्बन्ध रहता है तब तक आत्मा मुक्त नहीं हो पाती। आतम तथा लिंग शरीर अमूर्त है। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा पुद्गलों के संयोग से नहीं बना अतः उसके चित्र नहीं लिये जा सकते उसका अनुभव बुद्धिरूपी कैमरे में ही हो सकता है।

स्थूल से सूक्ष्म की साधना-शवासन में लेटकर सूक्ष्म जगत की साधना सरलता से की जा सकती है। वैसे समकाय शिरोग्रीव बैठकर 'त्रिरुन्नत' विधि से धारणा तथा ध्यान का अभ्यास करने पर पहले स्थूल आकृतियाँ ध्यान में आती हैं फिर ज्योतिर्मय छाया तथा अमूर्त ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। अभ्यास दृढ़ होता चला जाये तो तेजस धारणा पुष्ट होने पर सूक्ष्म जगत में प्रवेश करने का पासपोर्ट मिल जाता है। शवासन की साधना के लिए सीधे लेटकर आधी आँखें बन्दकर, पैरों में एक फुट का फासला तथा हाथों की हथेलियाँ ऊपर की ओर खुली अंगुलियाँ आधी मुड़ी हुई ऐसी अवस्था में साधना प्रारम्भ करनी चाहिए पहले हम धारणा द्वारा स्थूल शरीर की त्वचा अस्थि, मज्जा, रस, रक्त आदि को ऊपर से नीचे तक बार-बार देखने का अभ्यास दृढ़ करें। फिर उससे क्रमशः सूक्ष्म में उतरकर शरीर के रासायनिक परिवर्तनों, ग्रन्थियों के स्रावों, हृदय की धड़कन, रक्त परिभ्रमण, नाभिमण्डलान्तर्गत जठराग्नि की क्रिया, श्वास-प्रश्वास को देखने का अभ्यास दृढ़ करें। उसके बाद और अन्दर उतरकर अपने तेजोमय शरीर को देखना प्रारम्भ करें। धीरे-धीरे यह अभ्यास भी दृढ़ हो जाये फिर सूक्ष्म शरीर को स्थूल से निकाल कर उसके द्वारा अपना स्थूल शरीर देखना प्रारम्भ करें। धीरे-धीरे सूक्ष्म के भी दृष्टा बन जायें। कारण में पहुँचकर सूक्ष्म के दृष्टा होते-होते कर्म संस्कारों के दृष्टा बन जायें। उसके बाद देखने वाला और दिखाई देने वाला दृश्य जहाँ एक हो जाते हैं उस दृष्टा को देखें। इस तरह हम उस स्थिति में पहुँच जायेंगे जिसे योग-दर्शन में 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।' सूत्र से कहा है।

सूक्ष्म शरीर में स्थित चक्रों के कमलों के बीजाक्षरों, उनकी कीर्णकाओं तथा शक्तियों पर ध्यान एकाग्र करने से भी सूक्ष्म जगत में प्रवेश करना सम्भव हो जाता है। यह यात्रा

इतनी लम्बी है कि 'अनेक जन्म संसिद्धि: ततो याति परांगतिम्।' (गीता) अनेक जन्मों में मंजिल तक पहुँच पाता है। यह कथन साधन योग के अभ्यासियों के लिए है। सिद्धयोग के विद्यार्थियों को एक ही जन्म में अपनी मंजिल मिल सकती है। क्योंकि साधन–योग पिपीलिका मार्ग है और सिद्धयोग विहंगम मार्ग है। सामान्यतया साधकों को साधन–योग का रास्ता मिल पाता है। सिद्धयोग का मार्ग बहुत बड़े पुण्यों के फलस्वरूप मिल पाता है।

योगपथ का पथिल होने के लिए योग–दर्शन में महर्षि पतंजलि ने जो मार्ग बतलाया है, उसे अपनाकर सफलता के शिखर तक पहुँचा जा सकता है। योग सूत्र के समाधिपाद के 20 वें सूत्र में कहा गया है–

श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधिप्रज्ञापूर्वक: इतरेषाम्।

विदेह और प्रकृतिलीन योगियों को योग–सिद्धि के लिए कोई साधना नहीं करनी पड़ती। जन्म लेते ही वे पूर्वजन्म में छोड़ी हुई स्थिति से आगे चलने लगते हैं। किन्तु जो इस कोटि के साधक नहीं है उन्हें योगपथ के लिए पाँच प्रकार की सम्पत्ति लेकर आगे बढ़ना चाहिए। सर्वप्रथम उनमें अपने लक्ष्य और मार्ग तथा मार्ग बताने वाले गुरु के प्रति प्रसन्नतायुक्त विश्वास होना चाहिए। श्रद्धावान को ही ज्ञान प्राप्त होता है। स्थूल शरीर को सारे रहस्य श्रद्धा की सम्पत्ति आते ही प्रकट हो जाते हैं। श्रद्धा से अपने लक्ष्य के प्रति उत्साह तथा धैर्य उत्पन्न होता है। धारणा की दृढ़ता बिना ब्रह्मचर्य के नहीं होती। ऊर्ध्व रेता ब्रह्मचारी धारणा तथा प्राणसंयमन के बल से सूक्ष्म जगत के रहस्यों को हस्तामलकवत् समझ लेता है। वीर्य के समस्त नाड़ियों में व्याप्त होने पर प्राण–वाहिनी नाड़ियाँ शक्ति का उत्सर्जन करने में समर्थ होती है तथा वीर्य की पुष्टि से जन्मांतर की संस्कारी स्मृति उपस्थित हो जाती है। दूसरे शब्दों में ब्रह्मचर्य रक्षा के कर्म शरीर का साक्षात्कार करने की क्षमता प्राप्त होती है। स्मृति उपस्थान से चित्त स्थिर होकर समाधि के द्वारा कारण शरीर का साक्षात्कार होता है। समाधि भावना से विवेकज्ञान पैदा होता है जिससे हर वस्तु के गुण धर्म स्वभाव को योगी यथार्थ रूप से जानने लगता है जानने से उस वस्तु से वैराग्य हो जाता है जिससे अपने स्वरूप में स्थित होने की स्थिति प्राप्त हो जाती है।

जैन दर्शन ने शरीर को पुद्गलों का समूह माना है। जीव आकाशीय पुद्गलों (Electones) को मिलकर शरीर पर्याप्त, आहार–पर्याप्त, भाषा, मन और श्वास का निर्माण करता है। जीव–सजीव है और ये सभी निर्जीव पदार्थ हैं। सजीव से निर्जीव का निर्माण तथा रूप परिवर्तन होता है। जीव की ही सृष्टि सूक्ष्म शरीर है जिसे सांख्य–दर्शन

की 'सुवर्ण सप्तति' नामक ग्रन्थ में अप्पास्वामी ने पृ. 40 पर सात अवयव वाला माना है। गौड़ पाद–भाष्य में उसे आठ माना है। आठ अवयव हैं–बुद्धि + मन + अहंकार + पंच तन्मात्रायें। इनमें से मन का बुद्धि के साथ अन्तर्भाव करने से ये सात हो जाते हैं। विज्ञान भिक्षु सूक्ष्म शरीर को सत्रह तत्त्वों संघात मानते हैं–बुद्धि + अहंकार को मिलाने से एक तत्त्व हुआ तथा पंचतन्मात्रायें तथा एकादश इन्द्रिय। अन्यत्र यह अठारह तत्त्वों से निर्मित माना गया है। महदादि सूक्ष्म पर्यन्त लिंग शरीर कहा जाता है जिसमें कर्मों के संस्कार सुरक्षित रहते हैं। सांख्य–दर्शन में कुछ विद्वानों का ऐसा लेख भी मिलता है कि–

तत्सूक्ष्म शरीरमेकादशेन्द्रिय संयुक्तम् त्रीन् लोकान् संसरति।

बुद्धि, अहंकार तथा पंचतन्मात्रायें और ग्यारह इन्द्रियों वाला सूक्ष्म शरीर तीनों लोकों में घूमता है।' सूक्ष्म शरीर में कितने ही तत्त्व हों, उसके साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिये वीर्य रक्षा आवश्यक है क्योंकि वीर्यरक्षा से शक्ति के साथ–साथ ज्ञान क्रिया भी बढ़ती है। साधना के लिए शक्ति की अपेक्षा है। जैसे हाई पॉवर लेन्स से सूक्ष्म वस्तु का छाया चित्र लिया जा सकता है। उसी प्रकार वीर्यवान् साधक प्राणों का उत्क्रमण कर उन्हें ब्रह्मनाड़ी मार्ग से सहस्त्रार की ओर ले जा सकता है। कर्म शरीर या कारण शरीर का सम्बन्ध ओज से है। जिन साधकों का वीर्य सुरक्षित रहकर ओजरूप में बदल गया है वे ही कर्म–शरीर से सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। ओज ही प्राण है तथा जीवन की ऊर्जा है। श्वास मात्र प्राण नहीं है। प्राण से श्वास गति करता है। अन्न का सूक्ष्म पदार्थ वीर्य है और वीर्य का भी सार तत्व ओज है। वही जीवनी शक्ति है। उसके बिना जीवन समाप्त हो जाता है। ओजस् या ऊर्जा के द्वारा ही स्थूल शरीर की रचना होती है। जैसा ओज होता है वैसा ही शरीर प्राप्त होता है। जैसे बीज में वृक्ष के फलों का स्वाद, पुष्पों का रंग, वृक्ष का आकार तथा पत्ते आदि छिपे रहते हैं उसी प्रकार ओज में ही जीवन की ऊर्जा छिपी रहती है। सूक्ष्म का निर्माण इसी ओज से होता है। इसे प्राणिक चेतना केन्द्र भी कहा जाता है। इस ओजस् के द्वारा इन्द्रियों की रचना होती है। यदि कर्म–शरीर में किसी इन्द्रिय की कमी हो तो स्थूल शरीर में उस इन्द्रिय का अभाव रहेगा। यदि कर्म–शरीर में मन का विकास होगा तो स्थूल शरीर में मस्तिष्क बनेगा। जिन जीवों में मन का विकास नहीं है उनके रीढ़ की हड्डी भी नहीं होती और मस्तिष्क भी नही होता। वर्तमान मनोवैज्ञानिक मनुष्य के आकार–प्रकार, व्यवहार तथा जीवन की सभी क्रियाओं के लिए शरीर के अन्दर विद्यमान नलिका विहीन

ग्रन्थियों के स्त्राव को कारण मानते हैं। जैसे पिटीच्वरी ग्रन्थि के स्त्राव से काम–भावना नियन्त्रण में रहती है। गोनेड ग्रन्थि के स्त्राव से व्यक्ति कामुक हो जाता है। इसी प्रकार थाइराइड ग्रन्थि के असन्तुलित स्त्राव के परिणामस्वरूप व्यक्ति बौना रह जाता है। प्रत्येक प्रकार की बीमारी, बुद्धि की कमी या परिवर्तनों के मूल में ग्रन्थियों का स्त्राव ही कारण है।

योगियों ने ध्यान विज्ञान के द्वारा सूक्ष्म शरीर के रहस्यों को देखा। विज्ञान अभी तक उसे नहीं देख पाया है। शरीर शास्त्रियों के अनुसार हार्मोन ग्रंथियों के स्त्राव से उत्पन्न होते हैं। योग शास्त्र के अनुसार सभी परिवर्तन 'अनुभाव बन्ध' के द्वारा होता है। सारे रस स्त्राव कर्म–संस्कार की प्रेरणा (ऊर्जा) के द्वारा होते हैं। यह ऊर्जा यदि आत्मा की ओर तथा चेतना के उच्च स्तरों की ओर प्रवाहित होती है तो समाधि होगी। आत्म–भावना विकसित होगी। यदि वह धारा आहार, भय, मैथुन और परिग्रह केन्द्रों को प्रभावित करेगी तो व्यक्ति सूक्ष्म जगत में प्रवेश नहीं कर सकेगा। यह ऊर्जा का प्रवाह कुण्डलिनी शक्ति के नाम से प्रसिद्ध हैं। जब यह ऊर्जा हृदय कमल की पंखुड़ियों को चेतन करती है तो समता तथा ज्ञान की सात्विक वृत्ति जगती है तथा आज्ञा–चक्र से ऊपर अवधि ज्ञान होता है। चेतना के स्तरों का साक्षात्कार करने से अनन्त शक्तियों की खिड़कियाँ खुल जाती हैं जिनसे होकर आत्म–शक्ति प्रवाहित होकर लोक–कल्याण करती है। श्वास–प्रश्वास जितनी गहरी होगी उतनी ही प्राणशक्ति ऊर्जस्वित होगी। श्वास की गति प्राणशक्ति से संचालित होती है और प्राणशक्ति सूक्ष्म प्राण (पर्याप्ति) से संचालित होता है वह जीवन के प्रारम्भ में ओजस से निर्मित हो जाता है। सूक्ष्म शरीर का आधार यही ओज होता है। प्राण आकाश–मण्डल में व्याप्त होता है उसे श्वास द्वारा प्राणों के साथ एक रस करते हुए प्राप्त करते हैं। वाह्य आकाशीय प्राण शरीरस्थ सूक्ष्म प्राण को पोषण देता है। गहरी और लम्बी श्वासों के अभ्यास से प्राणशक्ति के द्वारा चेतना के नये–नये केन्द्र सक्रिय हो उठते हैं। इस क्रिया को जैन दर्शन की भाषा में 'दीर्घ श्वास प्रेक्षा' कहते हैं। 'समवृत्तिश्वास प्रेक्षा' तथा सूक्ष्म श्वास प्रेक्षा द्वारा मन के श्वास–प्रश्वास पर ध्यान केन्द्रित करना, उसे देखना तथा वाह्य श्वास को सूक्ष्म करना तथा अन्दर की प्राणशक्ति को बढ़ाने से चित्त की एकाग्रता बढ़ती है। एक नथुने से श्वास लेना और दूसरे से रेचन करने के अभ्यास से चेतना के विशिष्ट केन्द्रों का मार्ग खुलता है अतीन्द्रिय ज्ञान उपलब्ध हो जाता है जिससे सूक्ष्म शरीर के द्वारा योगी आश्चर्य चकित करने वाले कार्य कर सकता है।

स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर में गमन करने की विधि का संकेत योगदर्शन में विभूति

पाद के 38वें सूत्र में उपलब्ध होता है–

बन्धकारण शैशिल्यात् प्रचार संवेदनात् च चित्तस्य परशरीरावेशः।

कर्मभोग के वशीभूत होकर चंचल मन शरीर में बन्दी बन गया है। समाधि के द्वारा बन्ध के कारण कर्मों का नाश हो जाता है तथा चित्तगामी नाड़ियों का ज्ञान हो जाता है। चित्त जिन नाड़ियों के द्वारा सर्वत्र विचरण करता है उसका ज्ञान समता की स्थिति में होता है। चित्तगामी नाड़ियों में संयम करने से चित्त के आने जाने का रास्ता मालूम हो जाता है। अपने चित्त को नाड़ियों से निकाल कर योगी दूसरे के शरीर में प्रविष्ट कर उसे प्रभावित कर देता है। चित्त के पीछे इन्द्रियाँ भी चली जाती हैं जैसे रानी मक्खी के पीछे अन्य मक्खियाँ उड़ जाती हैं और उसके कहीं बैठने पर सभी मक्खियाँ बैठ जाती हैं।

मुलडीन कृत 'The Projection of Astral Body' नामक पुस्तक में प्राण के उत्क्रमण की एक विधि का उल्लेख किया गया है। फ्रांस के डुगवेल ने भी इस विषय में अपनी पुस्तक में प्रकाश डाला है। यह विधि मनोवांछित स्वप्न देखने के लिए काम में लाई जाती है। जिस दिन यह प्रयोग करना है उस दिन निराहार रहें तथा मादक द्रव्यों का बिल्कुल सेवन न किया जाय। मध्यरात्रि के अन्धकार में पीठ के बल लेटकर भ्रूमध्य में अपनी दृष्टि केन्द्रित करें। भ्रूमध्य के बिन्दु में लीन होने तथा प्राणमय सूक्ष्म शरीर के बाहर निकलते आने की भावना करते रहें। इस विधि से प्राणमय सूक्ष्म शरीर स्थूल पांचभौतिक शरीर से अलग होकर अपनी इच्छित वस्तु के निकट पहुँच जायेगा। किसी इच्छित शरीर में प्रवेश कर उसे प्रभावित करेगा। शरीर से बाहर आने पर सूक्ष्म शरीर 'सिलवर कार्ड' से भ्रूमध्य में जुड़ा रहता है। उसी सूक्ष्म तन्तु से प्राण पुनः लौटकर स्थूल शरीर में चले जाते हैं। यदि यह तन्तु टूट जाये तो प्राण स्थूल शरीर में लौटकर नहीं आ सकेंगे। संकल्प की दृढ़ता तथा श्री सद्गुरुदेव के चरण कमलों में यदि अनन्य श्रद्धा हो तो श्रद्धा योगी की मां की तरह रक्षा करती है। जब तक योगी नहीं चाहता तब तक सूक्ष्म तन्तु से शरीर का विच्छेद नहीं होता। श्री सद्गुरु तत्व काल के भी महाकाल है तथा कालातीत हैं। जब उनमें प्राणलय हो जाते हैं, उनके चरणों के तन्तु से जुड़कर योगी सूक्ष्म से सूक्ष्म में प्रवेश कर उसमें से उसी कृपा–तन्तु का सहारा लेकर वापिस लौट आता है। साधना मार्ग में सफलता पाने के लिए इसीलिए सद्गुरु शरणागति तथा गुरुभक्ति को बहुत आवश्यक माना गया है। एक कहावत प्रसिद्ध है कि जहाँ इष्ट होता है वहाँ कभी अनिष्ट नहीं होता है। इष्ट की कृपा की डोरी से साधक सर्वत्र निर्विघ्न रूप से विचरण कर सकता है।

जर्मनी में ग्रेस्टाल्ट (Gestalt) नाम का मनोविज्ञान हुआ है। वह समग्रता या पूर्णतावादी सिद्धान्त का आविष्कर्त्ता माना जाता है। उसके नाम से मनोविज्ञान में एक सम्प्रदाय चल पड़ा है जिसे गेस्टाल्टिज्म या होलिस्टिक स्कूल कहते हैं। उसका मत है कि हमारी अनुभूति पूर्ण की होती है फिर अंश की अनुभूति होती है। यदि हम उसी सिद्धान्त के अनुसार महदादि सूक्ष्म–पर्यन्त एवं मनो बुद्धि तथा स्थूल जगत की चेतना वच्छिन्न एकरूपता की अनुभूति कर सकें तो हमारा भय समाप्त हो जायेगा और हम आकुतो भय होकर इन्द्रियों से परे मन और मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे महत् तथा महत् से परे पुरुष की प्रकाशता, पूर्णता तथा इकाई का साक्षात्कार कर सकेंगे। इस सिद्धान्त का उपबृंहण भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में–

अविभक्तं विभक्तेषु,

यः पश्यति स पश्यति।

इस भिन्नताओं के बीच में सर्वत्र एक सूक्ष्म सूत्र अनुस्यूत है जो उस एकीभूत सूक्ष्म चेतन की अनुभूति करता है वही विज्ञानी पुरुष होता है। जैसे माला के दानों को एक सूत्र एक रूप बना उसे माला स्वरूप प्रदान करता है उसी प्रकार स्थूल से सूक्ष्म तक सभी पदार्थों को ऊर्जा का तन्तु एक बनाता है। प्रत्येक वस्तु में आकार–प्रकार की कुछ न कुछ व्यवस्था दिखाई पड़ती है। इस व्यवस्था के मूल में वह चेतन सत्ता है। ऊर्जा के महासागर में सभी प्रकार तैर रहे हैं। अन्दर–बाहर वही सूक्ष्म चेतना पदार्थ को घेरे हुए है। सूक्ष्म का दर्शन स्थूल यन्त्रों के सहारे नहीं हो सकता । सूक्ष्म दर्शन के लिए सूक्ष्म यन्त्र चाहिये। नेत्रों से सब कुछ नहीं देखा जा सकता। जब गुरुदेव की कृपा से दिव्य दृष्टि मिल जाती है तो संयम के बल से सूक्ष्म–तत्त्वों की उपलब्धि हो जाती है। योगी का स्थूल भूतों से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणुओं तक उसका अधिकार हो जाता है। उन तत्वों का संयोग और वियोग करने से वह नई सृष्टि बना देता है। यह स्थूल से सूक्ष्म की यात्रा योग के अपरिग्रह, प्रत्याहार, प्राणायाम तथा धारणा, ध्यान और समाधि आदि साधनों से होती है केवल विचार तथा तर्क से वस्तु के सारे धर्मों का ज्ञान नहीं हो सकता।

धर्म और कर्म

अपने आस-पास चारों ओर फैले प्रकृति-सौन्दर्य पर दृष्टि दौड़ाइये। उसकी प्रतिक्षण की हलचल पर सतर्कता से ध्यान दीजिये। उसकी बदलती अवस्था से क्षण भर एकरूप बनिये और उसकी परिवर्तित अनुपम स्थिति का बारीकी से अवलोकन कीजिये।

वह देखिये; पूर्व की ओर से धीरे-धीरे मन्थर गति से ऊपर उठ रहा सूर्य-बिम्ब! वह देखिये, तरु-लताओं पर स्वच्छन्द डोलने वाली रम्य कलिकायें! नींद से जगे व्यक्ति के अर्धोन्मीलित नेत्रद्वय की तरह बड़ी स्वस्थता से धीरे-धीरे वे अनेक पंखुड़ियाँ खोले जा रही हैं। क्षणभर में उन पंखुड़ियों के बीच छिपा परिमलयुक्त परागकुम्भ अब सुस्पष्ट दीखने लगा। उसमें भरे सुधामृत का आकण्ठ प्राशन करने के लिए गुंजार करते हुए आने वाला वह अलि-पटल! सभी कुछ एक ही क्षण में!

सुगन्ध दीखती नहीं। उसकी अनुभूति केवल श्वासों को ही होती है। फिर भी कितना मस्त और मतवाला बनाने वाले हैं वे पराग-कण और उनका वह परिमल, जिससे मलिन मन को सद्भावना का आकार प्राप्त होता है और वह अपनी मस्ती में झूमने लगता है। पर क्षणभर में जाने कहाँ से गुंजार करते भ्रमर आते हैं और वे चराचर को हँसाने-खिलाने वाले फूलों के परिमल मुक्त मकरन्द बिन्दुओं का पान करके तत्काल जिस रास्ते आये, उसी रास्ते गुंजार करते हुए ही निकले जा रहे हैं। हम केवल आँखें मूंद डोलते ही रहते हैं।

यह सारा क्या है? इससे हमें क्या शिक्षा मिलती है? कैसा बोध मिलता है? प्रत्येक के कर्त्तव्य-कर्म भिन्न-भिन्न हैं, प्रत्येक धर्म भिन्न-भिन्न! कारण, धर्म ही हर-एक से कर्म-कर्त्तव्य करा लेता है। धर्म के हाथों कर्म की सार्वभौम सत्ता है। धर्म के कारण ही एक बार नियत कर्म तब तक, जब तक कि वह साकार स्वरूप में बना हुआ है, बदल नहीं सकता।

सबका सदा चाहो परम कल्याण !

पर-हित को निज अहित मानता, पर-विकास को जो निज नाश।
पर-यश को निज अयश मानता, पर-उन्नति को अपना ह्रास।।
पर-सुख को निज दुःख मानता, पर-पूजन को निज अपमान।
पल-पल पाप कमाता ऐसा मानव अति दुर्मति, अज्ञान।।
रोग-भोग, निन्दा-स्तुति, अनहित-हित, जय-हार, मान-अपमान।
मिलते सब, होता जैसा निज कर्मजनित प्रारब्ध-विधान।।
कोई कर सकता न हमारा बिना कर्म के कुछ नुकसान।
पर निमित्त जो बनता, स्वयं खोदता वह निज दुःख की खान।।
हो चाहे प्रतिकूल परिस्थिति, हो चाहे सब विधि अनुकूल।
दोनों ही प्रभु-प्रेरित हैं, दोनों में प्रभु-अनुकम्पा मूल।।
उनसे लाभ उठाओ, चाहो सबका सदा परम कल्याण।
निज सुख-तन-मन-धन दे, चाहो पर का सदा विपद् से त्राण।।

वन्दना के पुष्प

वन्दना के पुष्प हे भगवान चरणों में चढ़ाऊं।
चन्दमोहन राम रट जीवन सफल अपना बनाऊं।।
शुद्ध बुद्धी दो प्रभु मैं भक्त तुम भगवान हो।
कर्ता अकर्ता हो तुम्हीं मैं जीव तुम कल्याण हो।।
आप ब्रह्मा और विष्णु आप ही शिव हैं प्रभु।
आपकी ज्योती जगत में जगमगाती है प्रभु।।
क्यों न जीवन की दयामय आपसे ज्योती जलाऊं।
चन्दमोहन नाम रट जीवन सफल अपना बनाऊं।।

●●●

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/21-23 OCTOBER 2021

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री _____

_____

_____

□□□□□□

कोपीनं शतखण्ड जर्जर तरं कथा पुनस्तताद्दशी।
नैश्चिन्त्यं सुखसाध्यभैक्ष्य मशननिद्रा श्मशनि बने।।
मित्राभित्र समानताति विमला चिन्ताऽथ शून्यालये।
ध्वस्ता शेषमदप्रमाद मुदितां योगी सुखं तिष्ठति।।

अर्थात् जिनका कोपीन जीर्ण होकर टुकड़े-टुकड़े हो गया है और कथरी भी इसी तरह की हो गई है और जो स्वयं निश्चिन्त है। भोजन के लिए भिक्षान्न जिनको सुख से प्राप्त है। जिसकी निद्रा श्मशान में अथवा वन में हुआ करती है। शत्रु और मित्र में जिसका समान भाव है, अत्यन्त एकान्त स्थान में जिनकी समाधि लगा करती है और मद-मोह आदि सभी दोष जिसके नष्ट हो चुके हैं, ऐसे योगी इस संसार में सुखपूर्वक रह सकते है।

संरक्षक – संयुक्तसंचालक अलगाववादी आन्दोलन की समस्या। मुद्रक एवं प्रकाशक श्री रामस्वरूप शर्मा के लिए राष्ट्रीय सहारा एवं सिद्धयोग, आगरा-3 में मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। सम्पादक : आचार्य श्री (डॉ.) रामावतार शर्मा

RNI NO. – UPBIN/2004/14588